ई-पत्रिका
₹ 49/-

▶ **यरूशलेम में** केसरिया समीकरण

▶ **मिडिल पावर** डिप्लोमेसी का उदय

CULT CURRENT

वर्ष: 9 अंक: 2 मार्च, 2026

WE MAKE VIEWS

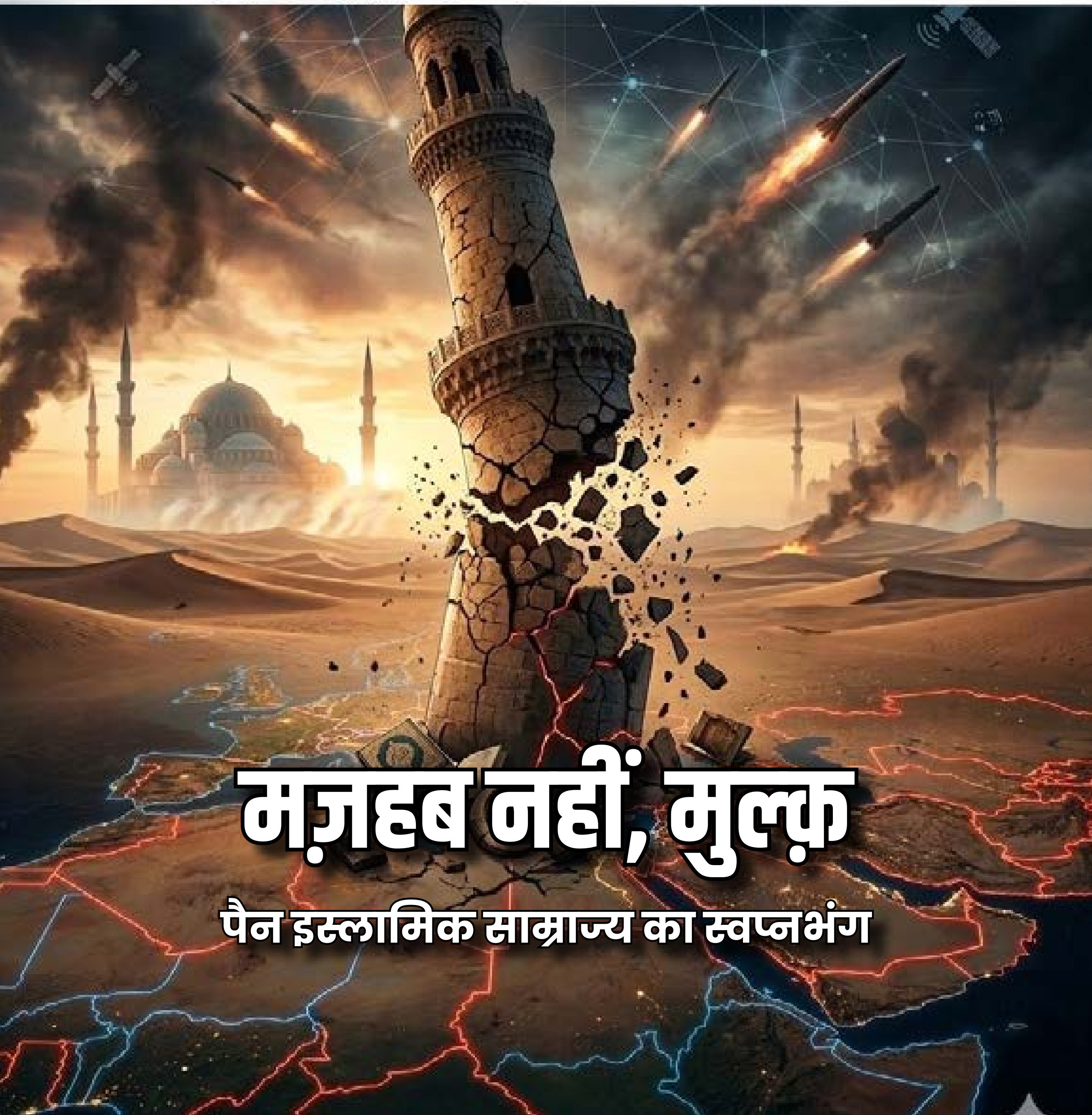

मज़हब नहीं, मुल्क़

पैन इस्लामिक साम्राज्य का स्वप्नभंग

Let's
360°
Media Consultancy
Web solution
Advertising
Publication
Languages Services
Survey & Research
Branding
AV Production
Campaign management
Event organizer
PR partner, PR associate
Content writer & provider
Media analyst
URJAS MEDIA VENTUE IS PERHAPS THE ONLY CONSULTING FIRM THAT CAN GIVE YOUR ORGANISATION A 360 DEGREE MEDIA BUSINESS GROWTH CONSULTING THROUGH IT'S 360 CAPABILITIES. FOR US, CONSULTING DOES NOT ONLY MEAN MECHANICAL COST REDUCTION THROUGH BETTER IT APPLICATIONS, WE FIND OUT WHAT YOUR ORGANISATION REALY NEEDS AND GIVE YOU AN INTELLECTUAL SOLUTION THAT HELP YOU REDUCE COST AS WELL AS HELPS YOURS BUSINESS GROW AND BEAT THE COMPETITION.
NOW!! OUR CONSULTANT WILL GET BACK TO YOU IN 24 HOURS AND PUT YOU IN TO THE HIGH GROWTH PATH
URJAS MEDIA
VENTURE
BEAT THE COMPETITION
www.urjasmedia.com
SMS 'BUSINESS GROWTH' TO +91-8826-24-5305 OR E-MAIL info@urjasmedia.com

गुमनाम नायिका

भारत के 'जेन-जी' बदलाव के सारथी

मान्या हर्षा

आज का भारत एक शक्तिशाली परिवर्तन का साक्षी बन रहा है, जिसका नेतृत्व वे युवा (जेन-जी) कर रहे हैं जो भविष्य का इंतज़ार नहीं करते, बल्कि उसे खुद गढ़ रहे हैं। मान्या हर्षा, माणिक्य सांघी और अर्चित पाटिल जैसे नाम उस अदम्य भावना के प्रतीक हैं, जहाँ जुनून और उद्देश्य मिलकर दुनिया की वास्तविक चुनौतियों का समाधान निकालते हैं। बेंगलुरु की 15 वर्षीया मान्या हर्षा एक प्रखर 'इको-वॉरियर' के रूप में उभरी हैं। अपनी पहल 'ग्रैंडमाज ग्रीन वीव' के माध्यम से उन्होंने 2,200 से अधिक पुरानी साड़ियों को 28,000 ईको-बैग्स में बदलकर नया जीवन दिया है। उनके इस प्रयास ने लगभग 1.2 टन कपड़ा कचरे को पर्यावरण में मिलने से बचाया। इतना ही नहीं, उन्होंने सब्जी के छिलकों से हस्तनिर्मित कागज और बीजों वाली स्टेशनरी बनाने का अनूठा नवाचार भी किया है। उनके इन कार्यों ने 25,000 से अधिक लोगों को एक 'सस्टेनेबल' जीवनशैली अपनाने के लिए प्रेरित किया है, जो यह साबित करता है कि पर्यावरण के प्रति जागरूकता की कोई उम्र नहीं होती। वहीं, 17 वर्षीय माणिक्य सांघी युवाओं के लिए साहित्य और आध्यात्मिकता की परिभाषा बदल रहे हैं। मात्र 5 वर्ष की आयु में अपनी यात्रा शुरू करने वाले माणिक्य आज 21 से अधिक पुस्तकों के बेस्टसेलिंग लेखक हैं।

संपादकीय टोली

संपादकीय

राष्ट्रीय संपादक
संजय श्रीवास्तव

संपादक
श्रीराजेश

प्रबंध संपादक
सच्चिदानंद पाण्डेय

रोमिंग संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

राजनीतिक संपादक
अंशुमान त्रिपाठी

मेट्रो संपादक
शक्ति प्रकाश श्रीवास्तव
डॉ. रुद्र नारायण

अंतर्राष्ट्रीय संपादक
श्रीश पाठक

कारपोरेट संपादक
गगन बत्रा

समन्वय संपादक
सतीश चंद्र

डिजीटल संपादक
जलज श्रीवास्तव

सहायक संपादक
संदीप कुमार

उप संपादक
मनोज कुमार
संतु दास

साहित्य संपादक
अनवर हुसैन

कला संपादक
जया वर्मा

वेब एवं आईटी विशेषज्ञ
अनुज कुमार सिंह

फोटो संपादक
विवेक पाण्डेय

विशेष संवाददाता
कमलेश झा
विकास गुप्ता

संवाददाता
संदीप सिंह
अनिरुद्ध यादव

ब्यूरो प्रमुख (अंतर्राष्ट्रीय)
अकुल बत्रा (अमेरिका)
सी.शिवरतन (नीदरलैंड)
जी. वर्मा(लंदन)
डॉ. मो. फहीम अकबर (पाकिस्तान)
ए. असगरजादेह (ईरान)
डॉ. निक सेरी (मलेशिया)

ब्यूरो प्रमुख (राष्ट्रीय)
राकेश नरवाल (नई दिल्ली)
संजय कुमार सिंह (लखनऊ)
कैप्टन सुधीर सिन्हा (रांची)
निमेष शुक्ल (पटना)
नागेन्द्र सिंह (कोलकाता)
राकेश रंजन (गुवाहाटी)

विपणन
सत्यजीत चौधरी
महाप्रबंधक

ऑनलाइन प्रसार
सृजीत डे

वर्षः 9 अंकः 2 मार्च, 2026

Follow us:
fb.com/cultcurrent @Cult_Current cultcurrent@gmail.com

URJAS MEDIA VENTURE
Head office: Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109, INDIA, Tel: +91 6289-26-2363
Corporate Office: 14601, Belaire Blvd, Houston, Texas 77083 USA Tel: +1 (832) 670-9074
Web: http://cultcurrent.in

Cult Current is a monthly e-magazine published by Urjas Media Ventures from Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109.
Editor: Srirajesh

Disclaimer: All editorial and non-editorial positions in the e-magazine are honorary. The publisher and editorial board are not obligated to agree with all the views expressed in the articles featured in this e-magazine. Cult Current upholds a commitment to supporting all religions, human rights, nationalist ideology, democracy, and moral values.

COVER STORY 30

12 अफ़गानिस्तान -पाकिस्तान के बीच 'खुला युद्ध'
सरहदों पर सुलगती आग

16 मिडिल पावर डिप्लोमेसी का उदय

20

CONT

डिजिटल संप्रभुता का भारतीय संकल्प'	24
यरूशलेम में केसरिया समीकरण	40
ढाका का सियासी थिएटर	44
शांति नहीं , नया शीत युद्ध	48
होर्मुज का 'डेथ ट्रैप'...	54
तेल, कूटनीति और युद्ध	58
लोबिटो कॉरिडोर: नया ब्रह्मास्त्र .	60
भारत का जल दिवालियापन	64
क्यूआर कोड का तिलिस्म	68
संप्रभुता के उड़ रहे परखच्चे	70
बूंग: धुएं के अक्षर और उम्मीद की राख	74

76
दिशा - तलविंदर का Lollapalooza Love

Small talk

चर्चाओं का बाज़ार गर्म!

बॉलीवुड के गलियारों में दीपिका पादुकोण को लेकर चर्चाओं का बाज़ार काफी गर्म है। हाल ही में मुंबई के एक पॉश रेस्टोरेंट में उन्हें एक जाने-माने अंतरराष्ट्रीय फिल्म निर्माता के साथ देर रात डिनर करते हुए देखा गया, जिसके बाद से ही फिल्मी गलियारों में तरह-तरह की अटकलें लगाई जा रही हैं। चश्मदीदों की मानें तो दोनों के बीच काफी लंबी और गंभीर बातचीत का दौर चला, जिसने एक बड़े ग्लोबल प्रोजेक्ट की संभावनाओं को हवा दे दी है। हालांकि, दीपिका या उनकी टीम की ओर से इस मुलाकात को लेकर अभी तक कोई आधिकारिक पुष्टि नहीं की गई है, लेकिन अंदरूनी सूत्र इसे किसी बड़े अंतरराष्ट्रीय सहयोग का संकेत मान रहे हैं। दूसरी ओर, सोशल मीडिया पर दीपिका के प्रशंसकों के बीच पहले से ही कई थ्योरीज वायरल हो रही हैं। ●

2026 में तहलका मचाने वाली खोजें

चिकित्सा विज्ञान में AI

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक क्रांतिकारी अध्याय लिख रहा है। हाल ही में शोधकर्ताओं ने एक ऐसी उन्नत AI प्रणाली विकसित की है, जो सामान्य मेडिकल स्कैन के माध्यम से शुरुआती चरण के कैंसर का अत्यंत सटीक पता लगाने में सक्षम है। यह तकनीक उन सूक्ष्म पैटर्न्स और बारीकियों का विश्लेषण करती है, जिन्हें इंसानी आँखें अक्सर नहीं देख पातीं। इस नवाचार की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह डॉक्टरों को बीमारी का निदान पहले की तुलना में कहीं अधिक तेजी से और सटीकता के साथ करने में मदद करेगी। ●

रियूज़ेबल रॉकेट!

अंतरिक्ष विज्ञान की दुनिया में एक नए युग की शुरुआत हो रही है, जहाँ 'रियूज़ेबल रॉकेट' की नई पीढ़ी ने एक साथ कई लॉन्च और लैंडिंग चक्रों को सफलतापूर्वक पूरा कर इतिहास रच दिया है। यह उपलब्धि न केवल तकनीकी कौशल का प्रदर्शन है, बल्कि अंतरिक्ष अभियानों को सस्ता और सुलभ बनाने की दिशा में एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी कदम भी है। इंजीनियरों का मानना है कि इस तकनीक के परिपक्व होने से लॉन्चिंग की लागत में भारी कमी आएगी और एक ही रॉकेट को दोबारा तैयार करने में समय कम लगेगा। ●

क्वांटम कंप्यूटिंग में एक बड़ी उपलब्धि!

क्वांटम कंप्यूटिंग की दुनिया में वैज्ञानिकों ने एक बड़ी उपलब्धि हासिल करते हुए एक ऐसे स्थिर 'क्वांटम प्रोसेसर' का प्रदर्शन किया है, जो पिछले डिजाइनों की तुलना में 'क्यूबिट्स' को अधिक समय तक सक्रिय रखने में सक्षम है। इस नई सफलता के पीछे उन्नत 'एरर करेक्शन' और कूलिंग सिस्टम की अहम भूमिका है, जिनकी मदद से अब जटिल गणनाओं को पहले से कहीं अधिक विश्वसनीयता के साथ पूरा किया जा सकता है। यह तकनीकी छलांग क्वांटम कंप्यूटिंग को कई समस्याओं को सुलझाने के और करीब ले आई है। ●

वैज्ञानिकों ने किया एक नया सौर अवलोकन प्रणाली विकसित

खगोल विज्ञान के क्षेत्र में एक बड़ी कामयाबी हासिल करते हुए वैज्ञानिकों ने एक ऐसी अत्याधुनिक सौर अवलोकन प्रणाली विकसित की है, जो शक्तिशाली सौर तूफानों का पता मौजूदा तरीकों की तुलना में कई घंटे पहले लगा सकती है। यह प्रणाली सूर्य की सतह पर होने वाले उन सूक्ष्म चुंबकीय परिवर्तनों पर नज़र रखती है, जिन्हें अब तक समय रहते पकड़ना संभव नहीं था। इस नई तकनीक की मदद से अब 'स्पेस वेदर' यानी अंतरिक्ष के मौसम की सटीक भविष्यवाणी करना आसान हो जाएगा। ●

महिंद्रा एंड महिंद्रा ने पेश किया EV का नया अवतार

महिंद्रा एंड महिंद्रा ने इलेक्ट्रिक वाहन (EV) बाजार में अपनी पकड़ मजबूत करते हुए XEV 9e (जिसे पहले XUV.e9 कांसेप्ट के नाम से जाना जाता था) को एक नए अवतार में पेश किया है। फरवरी 2026 में इसके 'सिनेलक्स एडिशन' (Cineluxe Edition) और विभिन्न नए पैक्स की बुकिंग व लॉन्च के साथ कंपनी ने अपने इलेक्ट्रिक पोर्टफोलियो का विस्तार किया है।महिंद्रा के अत्याधुनिक INGLO EV प्लेटफॉर्म पर आधारित यह कूपे-स्टाइल वाली इलेक्ट्रिक SUV न केवल लंबी ड्राइविंग रेंज प्रदान करती है, बल्कि इसमें भविष्य की तकनीक का भी समावेश है। ●

नियुक्ति-इस्तीफा

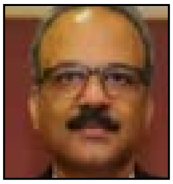

डॉ.राजीव सिंह रघुवंशी,
डीजीसी, भारत

डॉ. राजीव सिंह रघुवंशी को पुनः भारत के ड्रग्स कंट्रोलर जनरल के रूप में नियुक्त किया गया है। अपनी इस निरंतरता के साथ, वे केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन के तहत दवाओं, टीकों और चिकित्सा उपकरणों के विनियमन, अनुमोदन और सुरक्षा निगरानी की जिम्मेदारी संभालते रहेंगे।

माइकल देबब्रत पात्रा, डेपुटी गवर्नर,
भारतीय रिजर्व बैंक

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री माइकल देवव्रत पात्रा ने फरवरी 2026 में भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) के डिप्टी गवर्नर के पद से इस्तीफा दे दिया है। उनके इस निर्णय के साथ ही देश के केंद्रीय बैंक में मौद्रिक नीति, आर्थिक अनुसंधान और वित्तीय स्थिरता जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों की कमान संभालने का उनका लंबा कार्यकाल समाप्त हो गया है।

उन्होंने कहा

बेंजामिन नेतन्याहू
प्रधानमंत्री, इजराइल

इज़राइल पर होने वाले किसी भी हमले का मुंहतोड़ जवाब दिया जाएगा और हम अपने नागरिकों की रक्षा के लिए जो कुछ भी आवश्यक होगा, कड़ा कदम उठाएंगे।

शी जिंगपिंग
राष्ट्रपति, चीन

चीन अपनी संप्रभुता की रक्षा मजबूती से करेगा और अपने आंतरिक मामलों में किसी भी बाहरी हस्तक्षेप को बर्दाश्त नहीं करेगा।

श्रद्धांजलि

डॉ. राम मनोहर लोहिया भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रखर सेनानी, समाजवादी चिंतक और ओजस्वी राजनेता थे। 23 मार्च 1910 को उत्तर प्रदेश के अकबरपुर में जन्मे लोहिया ने न केवल आज़ादी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, बल्कि स्वतंत्रता के बाद के भारतीय राजनीतिक परिदृश्य को भी एक नई दिशा दी। उनकी शिक्षा भारत और विदेश दोनों जगह हुई; उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की, जहाँ समाजवाद और साम्राज्यवाद विरोधी विचारधारा के प्रति उनकी समझ और गहरी हुई।लोहिया गरीबों और वंचितों के अधिकारों के प्रबल पैरोकार थे और समानता, न्याय एवं अहिंसक प्रतिरोध के सिद्धांतों में अटूट विश्वास रखते थे। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उन्होंने महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे दिग्गजों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया, हालांकि वैचारिक मतभेदों के कारण बाद में उन्होंने कांग्रेस से अपनी राहें अलग कर लीं। 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' को संगठित करने में उनकी भूमिका ऐतिहासिक रही, जिसके चलते उन्हें कई बार जेल की यातनाएं भी सहनी पड़ीं।स्वतंत्रता के पश्चात, लोहिया कांग्रेस सरकार की नीतियों के प्रखर आलोचक बनकर उभरे। उन्होंने सत्ता के विकेंद्रीकरण और एक समतावादी शासन व्यवस्था की वकालत की। भारतीय समाजवादी पार्टी के संस्थापक सदस्यों में से एक के रूप में उन्होंने लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए निरंतर संघर्ष किया। उनके 'सप्त क्रांति' (सात क्रांतियां) के विचार का उद्देश्य जाति, वर्ग, लिंग और आर्थिक असमानता जैसे क्षेत्रों में व्यापक समाज सुधार लाना था।

डॉ. राम मनोहर लोहिया
(23/03/1910-12/10/1967)

एक दूरदर्शी नेता के रूप में डॉ. लोहिया के विचार आज भी भारतीय राजनीति और समाज को प्रेरित करते हैं। सामाजिक न्याय के प्रति उनका समर्पण और आम जनमानस के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता उन्हें भारतीय इतिहास के अमर नायकों की श्रेणी में खड़ा करती है।

वैश्विक जलवायु सहयोग की नई दिशा

वैश्विक जलवायु सहयोग की दिशा में एक नई और सशक्त लहर देखने को मिली, जब दुनिया की कई प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं ने कार्बन उत्सर्जन में कटौती और स्वच्छ ऊर्जा को अपनाने की अपनी प्रतिबद्धताओं को और मजबूत करने का संकल्प लिया। यूरोप, एशिया और अमेरिका के शीर्ष नेताओं ने एक उच्च-स्तरीय जलवायु मंच पर मुलाकात की, जहाँ ग्लोबल वार्मिंग को सीमित करने और जलवायु लचीलेपन को बढ़ाने के लिए समन्वित रणनीतियों पर गहन चर्चा हुई। इस विमर्श का मुख्य केंद्र अक्षय ऊर्जा का विस्तार, वनों का संरक्षण और निम्न-कार्बन अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहे विकासशील देशों को आवश्यक सहायता प्रदान करना था। पर्यावरण समूहों ने इस नए राजनीतिक उत्साह का स्वागत तो किया है, लेकिन साथ ही सरकारों से यह आग्रह भी किया है कि वे इन वादों को कागजों से निकालकर धरातल पर ठोस कार्रवाई में बदलें। ●

ऊर्जा बाज़ारों में मंदी और अस्थिरता का साया

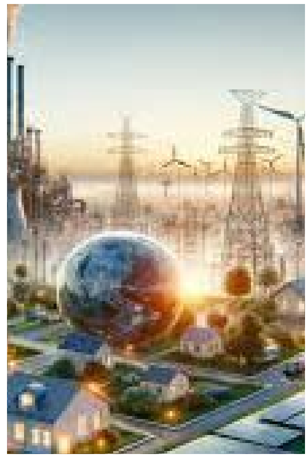

ऊर्जा बाज़ारों को विश्व बाजार में जबरदस्त अस्थिरता का सामना करना पड़ा, जहां बढ़ते भू-राजनीतिक तनावों ने कच्चे तेल और प्राकृतिक गैस की कीमतों को तेजी से ऊपर धकेल दिया। विश्लेषकों की रिपोर्ट के अनुसार, कच्चे तेल की कीमतों में आए अचानक उछाल और यूरोपीय गैस लागत में हुई भारी वृद्धि ने दुनिया भर में मुद्रास्फीति (महंगाई) और आर्थिक स्थिरता को लेकर गंभीर चिंताएँ पैदा कर दी हैं। इस अनिश्चितता का सीधा असर वित्तीय बाज़ारों पर भी देखा गया है। ●

विज्ञान के क्षेत्र में महिलाओं का बढ़ता कदम

दुनिया भर में 'विज्ञान में महिलाओं और बालिकाओं का अंतरराष्ट्रीय दिवस' मनाया गया। इस विशेष दिन का उद्देश्य वैज्ञानिक क्षेत्रों में लैंगिक समानता को बढ़ावा देना और उन बाधाओं को दूर करना है जो महिलाओं को इस क्षेत्र में आगे बढ़ने से रोकती हैं। इस अवसर पर विभिन्न विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों ने कई कार्यक्रमों का आयोजन किया, जिनका मुख्य लक्ष्य युवा युवतियों को 'स्टेम' (STEM—विज्ञान, तकनीक, इंजीनियरिंग और गणित) में अपना करियर बनाने के लिए प्रेरित करना था। ●

वैश्विक महामारी समझौते में WHO का बड़ा कदम

विश्व स्वास्थ्य संगठन के सदस्य देशों ने फरवरी 2026 में प्रस्तावित वैश्विक महामारी समझौते के एक महत्वपूर्ण अनुबंध पर अपनी चर्चा और वार्ताओं को आगे बढ़ाया। इन वार्ताओं का मुख्य केंद्र 'पैथोजन एक्सेस' और 'बेनिफिट-शेयरिंग' तंत्र रहा, जिसे इस तरह डिज़ाइन किया गया है कि भविष्य में किसी भी बीमारी के प्रकोप के दौरान टीकों, डेटा और चिकित्सा संसाधनों का वितरण पूरी तरह न्यायसंगत और पारदर्शी हो सके। स्वास्थ्य विशेषज्ञों का मानना है कि यह ढांचा न केवल उभरते हुए संक्रामक रोगों के खिलाफ वैश्विक तैयारी को मजबूत करेगा, बल्कि देशों के बीच आपसी सहयोग की एक नई मिसाल भी पेश करेगा। ●

युद्ध की दहलीज पर दुनिया, नहीं थम रहा रूस-यूक्रेन संकट

भू-राजनीति के केंद्र में बना यह संघर्ष फरवरी 2026 में भी अंतरराष्ट्रीय सुर्खियों पर हावी रहा। रूस-यूक्रेन युद्ध के चार साल पूरे होने के बावजूद, फ्रंटलाइन पर सैन्य गतिविधियों और वैश्विक शक्तियों के बीच जारी कूटनीतिक तनातनी कम होने का नाम नहीं ले रही है। हालिया सैन्य घटनाक्रमों और अग्रिम मोर्चों पर बढ़ती आक्रामकता ने इस संकट को एक बार फिर वैश्विक ध्यानाकर्षण के केंद्र में ला खड़ा किया है। ●

आर्टेमिस मिशन: चांद से मंगल तक की नई छलांग

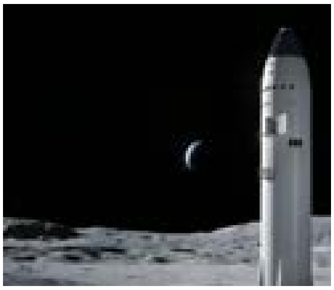

नासा और उसके अंतरराष्ट्रीय भागीदारों ने 'आर्टेमिस चंद्र कार्यक्रम' के अगले चरण की तैयारियों को एक नई गति दी है। इस दशक के अंत तक अंतरिक्ष यात्रियों को पुनः चंद्रमा की सतह पर उतारने के महत्वाकांक्षी लक्ष्य के साथ, इंजीनियरों ने लंबी अवधि के मिशनों के लिए डिज़ाइन किए गए अंतरिक्ष यान प्रणालियों का महत्वपूर्ण परीक्षण सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है। यह कार्यक्रम आधुनिक युग के सबसे बड़े अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष सहयोगों में से एक है, जिसमें यूरोप, जापान और कनाडा की अंतरिक्ष एजेंसियां कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं। ●

वैश्विक कूटनीति का नया अध्याय, संघर्ष और सहयोग के बीच संतुलन की तलाश

दुनिया भर के नेताओं ने कूटनीतिक प्रयासों को और अधिक तेज कर दिया है, क्योंकि बढ़ते भू-राजनीतिक तनाव और आर्थिक अनिश्चितताओं ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों की पूरी तस्वीर को ही बदलकर रख दिया है। प्रमुख वैश्विक शक्तियों के बीच हुई हालिया उच्च-स्तरीय बैठकों का मुख्य एजेंडा संघर्षों का प्रबंधन करना, अस्थिर होते वैश्विक ऊर्जा बाज़ारों को नियंत्रित करना और आर्थिक सहयोग के नए रास्ते तलाशना रहा। यह कूटनीतिक सक्रियता विशेष रूप से रूस-यूक्रेन युद्ध के समाधान, मध्य-पूर्व में शांति की बहाली और इंडो-पैसिफिक क्षेत्र में उभरते नए समीकरणों पर केंद्रित रही। इस दौरान विभिन्न सरकारों ने संवाद, बहुपक्षीय सहयोग और रणनीतिक साझेदारी पर जोर दिया, ताकि संघर्षों को और अधिक बिगड़ने से रोका जा सके। विश्लेषकों का मानना है कि वर्तमान दौर की कूटनीति प्रमुख राष्ट्रों के बीच 'प्रतिस्पर्धा' और 'सहयोग' के एक बहुत ही नाजुक संतुलन को दर्शाती है। ●

समुद्रों की रक्षा के लिए वैश्विक महा-अभियान की शुरुआत

कई देशों और प्रमुख पर्यावरण संगठनों ने मिलकर वैश्विक महासागरों में 'समुद्री संरक्षित क्षेत्रों' के विस्तार के लिए एक विशाल अंतरराष्ट्रीय पहल का आगाज़ किया है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य समुद्र के भीतर मौजूद संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र को सुरक्षित करना, विलुप्तप्राय प्रजातियों को बचाना और टिकाऊ मत्स्य पालन को बढ़ावा देना है। वैज्ञानिकों का दृढ़ मत है कि जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटने और जैव विविधता को अक्षुण्ण रखने के लिए समुद्री संरक्षण की कठोर नीतियां अब अनिवार्य हो चुकी हैं। ●

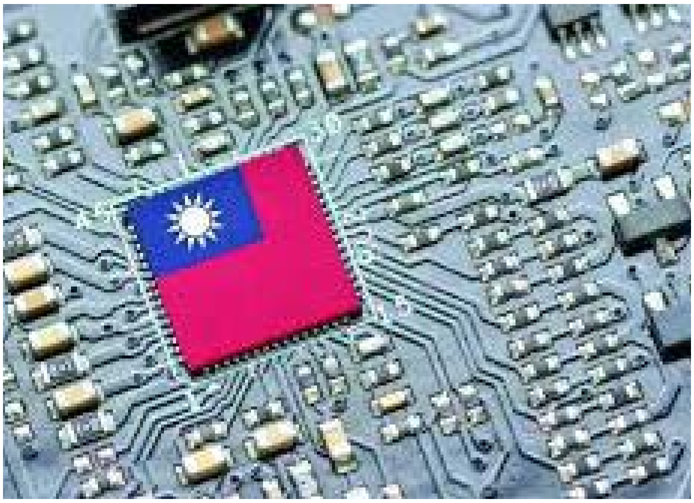

सिलिकॉन संप्रभुता की मची होड़: वैश्विक चिप क्षेत्र में नए युग का उदय

साल 2026 की शुरुआत के साथ ही वैश्विक सेमीकंडक्टर उद्योग एक अभूतपूर्व विस्तार के चरण में प्रवेश कर चुका है। इस दौर की सबसे बड़ी पहचान सीमा पार निवेश में भारी उछाल और रणनीतिक साझेदारी का नया जाल है। अपनी आपूर्ति श्रृंखला को सुरक्षित करने के लिए एशिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिका की सरकारें अब केंद्रीकृत उत्पादन मॉडल से हटकर घरेलू विनिर्माण को आक्रामक रूप से सब्सिडी दे रही हैं। इस बदलाव के पीछे एआई, ईवी और हाई-एंड कंज्यूमर इलेक्ट्रॉनिक्स में उन्नत चिप्स की बेतहाशा बढ़ती मांग है। 'सिलिकॉन संप्रभुता' की यह भू-राजनीतिक दौड़ तकनीकी परिदृश्य को मौलिक रूप से नया आकार दे रही है। ●

भारत ने की वैश्विक 'एआई इम्पैक्ट समिट' की मेजबानी

नई दिल्ली के भारत मंडपम में 'इंडिया एआई इम्पैक्ट समिट' का आयोजन कर भारत वैश्विक तकनीक के केंद्र में आ गया है। इस पांच दिवसीय आयोजन में दुनिया भर के नेताओं, दिग्गज टेक कंपनियों के सीईओ, शोधकर्ताओं और स्टार्टअप नवाचारियों ने हिस्सा लिया, जहाँ 'जिम्मेदार आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' के भविष्य पर गहन मंथन हुआ। इस शिखर सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य वैश्विक एआई गवर्नेंस और आपसी सहयोग को आकार देने के लिए भारत को एक प्रमुख मंच के रूप में स्थापित करना था। सम्मेलन के दौरान एआई के नैतिक विकास, डेटा गवर्नेंस और जनहित से जुड़ी तकनीकों के साथ-साथ स्वास्थ्य, कृषि और जलवायु चुनौतियों के समाधान के लिए एआई के उपयोग पर विशेष चर्चा की गई। ●

आगामी चुनावों के लिए राजनीतिक दलों ने तेज की तैयारियां

भारत का राजनीतिक परिदृश्य काफी सक्रिय हो गया है, क्योंकि प्रमुख राजनीतिक दलों ने आगामी राज्य विधानसभा चुनावों के लिए अपनी तैयारियां तेज कर दी हैं। कई राज्यों में नेताओं ने जनसंपर्क अभियान, नई नीतिगत घोषणाएं और जमीनी स्तर पर कार्यकर्ताओं को एकजुट करने के प्रयास शुरू कर दिए हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि इस बार राजनीतिक विमर्श का केंद्र आर्थिक विकास, रोजगार सृजन और शासन सुधारों पर टिका है। यह बदलती लोकतांत्रिक प्रक्रिया में क्षेत्रीय मुद्दों की बढ़ती अहमियत को भी दर्शाता है। ●

केंद्र सरकार ने डिजिटल गवर्नेंस सुधारों को दी रफ्तार

केंद्र सरकार ने फरवरी 2026 में तकनीकी सुधारों के माध्यम से डिजिटल गवर्नेंस और सार्वजनिक सेवा वितरण को मजबूत करने के अपने प्रयासों को और तेज कर दिया है। इन नई पहलों का उद्देश्य नागरिक सेवाओं के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म का विस्तार करना, सरकारी प्रक्रियाओं में पारदर्शिता लाना और डेटा-आधारित नीति निर्माण को बेहतर बनाना है। डिजिटल गवर्नेंस के इस विस्तार से प्रशासनिक प्रणालियों में न केवल अधिक कुशलता आएगी, बल्कि विभिन्न सरकारी विभागों में सुलभता और जवाबदेही में भी सुधार होगा। ●

सरकार ने समाज कल्याण योजनाओं का किया विस्तार

भारत सरकार ने फरवरी 2026 में ग्रामीण आजीविका, स्वास्थ्य सेवा की पहुंच और खाद्य सुरक्षा में सुधार लाने के उद्देश्य से प्रमुख समाज कल्याण कार्यक्रमों के लिए व्यापक सहयोग की घोषणा की है। सरकारी अधिकारियों ने पोषण योजनाओं, महिला सशक्तिकरण की पहल और ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों के लिए बजट में की गई बढ़ोतरी पर विशेष जोर दिया। इन उपायों का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुरक्षा तंत्र को और अधिक मजबूत करना तथा शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में समावेशी विकास सुनिश्चित करते हुए असमानता को कम करना है। ●

भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर में मजबूती के संकेत

भारत का आर्थिक परिदृश्य काफी आशाजनक बना रहा। सरकारी आंकड़ों और स्वतंत्र पूर्वानुमानों के अनुसार, बुनियादी ढांचे पर खर्च, विनिर्माण क्षेत्र के विस्तार और मजबूत घरेलू मांग के कारण देश की विकास दर स्थिर बनी हुई है। नीति निर्माताओं ने डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर, अक्षय ऊर्जा और लॉजिस्टिक नेटवर्क में निरंतर निवेश पर विशेष बल दिया है। भारत के स्थिर व्यापक आर्थिक संकेतकों और नीतिगत सुधारों ने इसे दुनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में अपना स्थान बनाए रखने में मदद की है। ●

बुनियादी ढांचा विकास को गति दे रही है केंद्र सरकार

भारत सरकार ने फरवरी 2026 में बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचा विकास के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को एक बार फिर दोहराया है। इस दौरान राजमार्गों के निर्माण, रेलवे के आधुनिकीकरण और लॉजिस्टिक्स कनेक्टिविटी में हुई प्रगति को प्रमुखता से रेखांकित किया गया। सरकारी अधिकारियों के अनुसार, बेहतर परिवहन नेटवर्क व्यापार को बढ़ावा देने, लॉजिस्टिक्स लागत को कम करने और क्षेत्रीय आर्थिक विकास को गति देने के लिए अनिवार्य है। विशेषज्ञों का मानना है कि बुनियादी ढांचे में निरंतर निवेश भारत की दीर्घकालिक विकास रणनीति का एक मुख्य स्तंभ है। ●

ममता बनर्जी ने की मजबूत संघीय सहयोग की वकालत

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने फरवरी 2026 में केंद्र और राज्य सरकारों के बीच व्यापक संघीय सहयोग की मांग उठाकर राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान आकर्षित किया है। एक सार्वजनिक कार्यक्रम और मीडिया संबोधन के दौरान, बनर्जी ने इस बात पर जोर दिया कि राज्यों को अपनी कल्याणकारी और विकास योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए केंद्र से अधिक वित्तीय सहायता और नीतिगत समन्वय की आवश्यकता है। उन्होंने तर्क दिया कि भारत में संतुलित आर्थिक विकास और सामाजिक प्रगति के लिए 'सहकारी संघवाद' अनिवार्य है। उनके इस बयान ने राष्ट्रीय राजनीति में एक नई बहस छेड़ दी है, जहाँ कई विपक्षी नेताओं ने राज्यों की अधिक स्वायत्तता की उनकी मांग का समर्थन किया है, वहीं सत्तापक्ष के प्रतिनिधियों ने मौजूदा राजकोषीय नीतियों का बचाव किया है। राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि ममता बनर्जी के इस हस्तक्षेप ने केंद्र-राज्य संबंधों, राजस्व वितरण और भारत की संघीय शासन प्रणाली में राज्यों की बदलती भूमिका पर एक व्यापक चर्चा को पुनर्जीवित कर दिया है। ●

अक्षय ऊर्जा क्षमता विस्तार में भारत की लंबी छलांग

अपनी अक्षय ऊर्जा क्षमता का विस्तार जारी रखते हुए कई राज्यों में नई सौर और पवन ऊर्जा परियोजनाओं की घोषणा की है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, चालू वित्त वर्ष (जनवरी 2026 तक) में देश ने रिकॉर्ड 39,657 मेगावाट अक्षय ऊर्जा क्षमता जोड़ी है, जिसमें 34,955 मेगावाट सौर ऊर्जा और 4,613 मेगावाट पवन ऊर्जा शामिल है। सरकारी अधिकारियों ने इस बात पर जोर दिया है कि स्वच्छ ऊर्जा की ओर यह संक्रमण जलवायु प्रतिबद्धताओं को पूरा करने और दीर्घकालिक ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। ●

योगी ने यूपी के विकास मॉडल को किया रेखांकित

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने फरवरी 2026 में राज्य के बुनियादी ढांचे के तेजी से विस्तार और निवेश-आधारित विकास मॉडल को प्रस्तुत कर देश का ध्यान अपनी ओर खींचा है। जापान और सिंगापुर की अपनी हालिया चार दिवसीय कूटनीतिक निवेश यात्रा के दौरान, उन्होंने उत्तर प्रदेश को एक अग्रणी आर्थिक केंद्र के रूप में बदलने के लिए एक्सप्रेसवे, औद्योगिक गलियारों और लॉजिस्टिक्स पार्कों पर सरकार के विशेष ध्यान को रेखांकित किया।मुख्यमंत्री ने टोक्यो और सिंगापुर में निवेशकों को संबोधित करते हुए बताया कि राज्य में कानून-व्यवस्था में सुधार और प्रशासनिक सुधारों ने एक व्यवसाय-अनुकूल वातावरण तैयार किया है। इस यात्रा के दौरान उत्तर प्रदेश को लगभग 4 लाख करोड़ के निवेश प्रस्ताव प्राप्त हुए हैं, जिनमें 1.5 लाख करोड़ के समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए गए हैं। ●

श्रीराजेश, संपादक

पश्चिम एशिया

ईरान युद्ध नियति का अट्टहास

इतिहास के रक्त-रंजित पृष्ठों पर बारूद की गंध और अहंकार का यह प्रलयंकारी नृत्य केवल क्षेत्रीय संघर्ष नहीं, बल्कि एक वैश्विक महाविनाश की पदचाप है, जहां कूटनीति की राख पर मानवता और भविष्य के सपने दम तोड़ रहे हैं।

इतिहास के पृष्ठों पर जब विनाश की पटकथा लिखी जाती है, तो स्याही का स्थान रक्त ले लेता है और शब्दों की जगह चीखें गूंजती हैं। आज पश्चिम एशिया के मरुस्थल से उठती बारूद की गंध और धुएं के गुबार केवल एक क्षेत्रीय संघर्ष की आहट नहीं, बल्कि उस 'प्रलयंकारी प्रसव' की पूर्व-सूचना हैं, जो एक नई और भयावह विश्व-व्यवस्था को जन्म देने वाला है। ईरान की प्राचीन भूमि पर मंडराते युद्ध के काले मेघ उस सांस्कृतिक और सामरिक विरासत को निगलने को आतुर हैं, जिसने सहस्राब्दियों से मानवता को सभ्यता का पाठ पढ़ाया था।

इस युद्ध की विभीषिका किसी सामान्य सैन्य अभियान की भांति नहीं है। यह 'असममित युद्ध' और 'हाइब्रिड विनाश' का वह चरम बिंदु है, जहां सीमाएं मानचित्रों पर नहीं, बल्कि मलबे के ढेरों में विलीन हो रही हैं। ईरान के परमाणु प्रतिष्ठानों से लेकर तेहरान की गलियों तक, मिसाइलों की जो गर्जन सुनाई दे रही है, वह वास्तव में उस 'रणनीतिक धैर्य' के अंत की घोषणा है जो दशकों से एक पतले धागे पर टिका था। वैश्विक विचारकों के विश्लेषणों में उभरता हुआ 'प्रतिरोध की धुरी' आज केवल एक सैन्य गठबंधन नहीं, बल्कि एक आत्मघाती संकल्प बन चुका है, जो हमास, हिजबुल्लाह और हूतियों के माध्यम से पूरे क्षेत्र को एक ऐसी 'अग्नि-परीक्षा' में धकेल रहा है जहां विजेता कोई नहीं होगा।

युद्ध की सबसे वीभत्स परिणति शस्त्रों के टकराव में नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं के भस्मीकरण में दिखाई देती है। ईरान की गलियों में आज वह 'शून्य' व्याप्त है, जो किसी बड़े तूफान से पहले की खामोशी होती है। जब मिसाइलें आसमान का सीना चीरती हुई गिरती हैं, तो वे केवल इमारतों को नहीं ढहातीं, बल्कि एक पूरी पीढ़ी के सपनों और भविष्य को मलबे में दफन कर देती हैं। लाखों शरणार्थियों का रेला जब तुर्की और यूरोप की सीमाओं की ओर बढ़ेगा, तो वह केवल लोगों का पलायन नहीं होगा, बल्कि वह 'वैश्विक उदारवाद' के चेहरे पर एक करारा तमाचा होगा। यह विस्थापन उस 'मानवीय भूगोल' को बदल देगा, जिसे सहेजने में सदियां लगी थीं।

इस युद्ध की परिणति केवल तेहरान या तेल अवीव तक सीमित नहीं रहने वाली। होर्मुज जलडमरूमध्य, जो वैश्विक ऊर्जा आपूर्ति की कंठ-धमनी है, यदि इस युद्ध की वजह से पूरी तरह से भेंट चढ़ती है, तो संपूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था एक ऐसे 'ब्लैक होल' में समा जाएगी जहां से वापसी का मार्ग दशकों तक नहीं मिलेगा। तेल की कीमतों का अनियंत्रित उछाल केवल आंकड़ों का खेल नहीं होगा; यह विकासशील राष्ट्रों के चूल्हों को ठंडा कर देगा और विकसित देशों की विलासिता को धूल में मिला देगा।

यह वह 'आर्थिक नव-उपनिवेशवाद' है, जहां ऊर्जा का अभाव राष्ट्रों को घुटनों पर ला देगा।

दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो इस युद्ध की अंतिम परिणति 'शून्य' के अतिरिक्त कुछ नहीं है। क्या यह संघर्ष ईरान के शासन तंत्र को बदल देगा? या यह उसे एक ऐसी 'घायल शेर' की अवस्था में पहुंचा देगा जो मरते-मरते भी पूरे क्षेत्र को भस्म कर दे? पश्चिम की 'नियम-आधारित मर्यादाएं' इस युद्ध की अग्नि में जलकर राख हो चुकी हैं। आज अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं केवल 'विलाप का मंच' बनकर रह गई हैं, जो प्रस्तावों की आहुति तो देती हैं, लेकिन शांति के चिराग को प्रज्वलित नहीं कर पातीं।

ईरान युद्ध की यह विभीषिका वास्तव में उस 'अहंकार के प्रलयंकारी नृत्य' का परिणाम है, जहां कूटनीति की भाषा को प्रतिबंधों और ड्रोनों ने प्रतिस्थापित कर दिया है। यदि समय रहते प्रज्ञा का 'उत्तरायण' नहीं हुआ, तो इतिहास की वीथिकाएं हमें एक ऐसी सभ्यता के रूप में याद रखेंगी जिसने अपनी तकनीकी श्रेष्ठता का उपयोग केवल स्वयं के विनाश के लिए किया।

इस महाविनाश की परिणति एक ऐसे 'खंडित विश्व' के रूप में होगी, जहां अविश्वास की दीवारें और ऊंची होंगी और शांति केवल युद्धों के बीच का एक संक्षिप्त अंतराल मात्र बनकर रह जाएगी। काल के भाल पर अंकित ये रक्त-रंजित रेखाएं हमें चेतावनी दे रही हैं कि यदि युद्ध की इस 'भस्मासुर' प्रवृत्ति को नहीं रोका गया, तो आने वाली पीढ़ियों के पास विरासत में केवल धधकती हुई राख और पछतावे के आंसू ही शेष रहेंगे।

srirajesh.journalist @srirajesh editor@cultcurrent.com

अफ़ग़ानिस्तान -पाकिस्तान के बीच 'खुला युद्ध'

सरहदों पर सुलगती आग

परमाणु हथियारों से लैस पाकिस्तान और अफगानिस्तान के तालिबान शासन के बीच तनाव फरवरी के अंत में तेज़ी से बढ़ गया, जिससे क्षेत्रीय अस्थिरता और गहरा गई तथा लंबे समय तक चलने वाले संघर्ष की आशंका को लेकर चिंताएँ बढ़ने लगी हैं। आइए जानते हैं इस पूरे घटनाक्रम की मुख्य बातें।

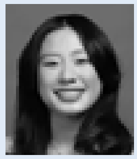

क्लारा फॉन्ग

फरवरी 2026 के आखिरी दिनों में, जब दुनिया की नज़रें मध्य-पूर्व में अमेरिका और ईरान के बीच चल रहे तनाव पर टिकी थीं, तब दक्षिण एशिया की सबसे अस्थिर सरहद—डूरंड लाइन—पर एक ऐसा सियासी और सैन्य भूकंप आया जिसने पूरे क्षेत्र की भू-राजनीति को हिलाकर रख दिया है। एक परमाणु-संपन्न देश और एक कट्टरपंथी इस्लामी इमाअत के बीच की यह जंग महज़ दो पड़ोसियों की तनातनी नहीं है। यह उस 'फ्रेंकस्टीन' (भस्मासुर) के पलटवार की खौफनाक कहानी है, जिसे कभी पाकिस्तान की सेना ने अपनी ही प्रयोगशाला में गढ़ा था।

इतिहास गवाह है कि 1990 के दशक में अफ़ग़ान तालिबान को पालने-पोसने से लेकर 2001 के बाद दो दशकों तक उन्हें नाटो सेनाओं से बचाकर सुरक्षित पनाहगाह देने का काम पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई ने ही किया था। अमेरिकी और पश्चिमी सेनाओं की आंखों में धूल झोंककर इस्लामाबाद ने जिस तालिबान को अपनी 'रणनीतिक गहराई' या स्ट्रैटेजिक डेप्थ के रूप में तैयार किया था, अंतरराष्ट्रीय कूटनीति का सबसे क्रूर मज़ाक देखिए कि आज वही तालिबान पाकिस्तान के गले की फांस बन चुका है।

'खुला युद्ध' और डूरंड लाइन पर बारूदी धुंध

फरवरी 2026 के अंतिम सप्ताह में अफ़ग़ानिस्तान की तालिबान सरकार ने विवादित साझा सीमा के पास स्थित पाकिस्तानी सैन्य ठिकानों पर सीधा और ताबड़तोड़ हमला बोल दिया। काबुल में बैठे तालिबानी आकाओं का दावा है कि यह हमला कुछ दिन पहले पाकिस्तान द्वारा अफ़ग़ान सैन्य ठिकानों पर की गई बमबारी का बदला था। इसके जवाब में, कुछ ही घंटों के भीतर, पाकिस्तानी वायुसेना ने अफ़ग़ानिस्तान के कई सीमावर्ती प्रांतों और—इतिहास में पहली बार—राजधानी काबुल के शहरी इलाकों पर बम बरसा दिए।

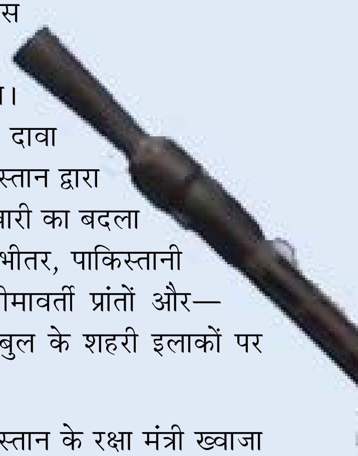

स्थिति की गंभीरता का अंदाज़ा पाकिस्तान के रक्षा मंत्री ख्वाजा आसिफ के उस बयान से लगाया जा सकता है, जिसमें उन्होंने इसे अफ़ग़ानिस्तान के साथ खुला युद्ध करार दिया। यह कोई छिटपुट गोलीबारी नहीं थी; यह अक्टूबर 2025 में हुए उस कमज़ोर युद्धविराम का चिथड़े-चिथड़े हो जाना था, जो कतर और तुर्की की मध्यस्थता के बाद बमुश्किल कायम हुआ था।

संयुक्त राष्ट्र सहायता मिशन के 2 मार्च के प्रारंभिक आंकड़ों के अनुसार, इस ताज़ा संघर्ष में अफ़ग़ानिस्तान के भीतर कम से कम 146 नागरिक हताहत हुए हैं, जिनमें 42 मृत और 104 घायल हैं। हालांकि अफ़ग़ान तालिबान ने बातचीत की मेज़ पर लौटने के कूटनीतिक संकेत दिए हैं, लेकिन कूटनीतिक गलियारों में यह

खौफ गहराने लगा है कि अगर यह आग और फैली, तो मध्य-पूर्व के तनाव से जूझ रही दुनिया के लिए एक नया ब्लैक होल तैयार हो जाएगा।

टीटीपी: दो भाइयों के बीच की खूनी लकीर

इस ताज़ा और खूनी टकराव की जड़ में एक ही नाम है—तहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान, जिसे आम बोलचाल में पाकिस्तानी तालिबान कहा जाता है।

पाकिस्तान का लगातार यह आरोप रहा है कि अफ़ग़ान तालिबान ने टीटीपी के आतंकियों को अपने यहां 'स्टेट गेस्ट' की तरह सुरक्षित पनाह दे रखी है, जहां से वे पाकिस्तान के भीतर खूनी खेल खेलते हैं। काबुल इस दावे को सिरे से खारिज करता है। लेकिन हकीकत यह है कि टीटीपी और अफ़ग़ान तालिबान वैचारिक और रणनीतिक रूप से जुड़वां भाई हैं।

टीटीपी का जन्म ही 2001 में अफ़ग़ानिस्तान पर अमेरिकी हमले के बाद की परिस्थितियों में हुआ था। जब पाकिस्तान ने अमेरिकी दबाव में आकर अपने ही पाले हुए जिहादियों पर कार्रवाई शुरू की, तो पाकिस्तानी जिहादियों ने इस्लामाबाद के खिलाफ बगावत कर दी और 2007 में आधिकारिक तौर पर टीटीपी का गठन किया। इन आतंकियों ने ही भागते हुए अफ़ग़ान तालिबान और अल-कायदा के नेताओं को पाकिस्तान के कबायली इलाकों में शरण दी थी। आज, जब अफ़ग़ान तालिबान सत्ता में है, तो वह अपने उन पुराने वफादारों की पीठ में छुरा घोंपने को तैयार नहीं है जिन्होंने बुरे वक्त में उनका साथ दिया था।

अक्टूबर 2025 में, जब टीटीपी के हमलों से आजिज़ आकर पाकिस्तान ने अफ़ग़ानिस्तान के भीतर आतंकवाद के बेस कैंप को नष्ट करने के नाम पर हवाई हमले किए, तो वह 2021 में तालिबान के सत्ता में लौटने के बाद का सबसे खूनी संघर्ष बन गया था। इसके बाद हिंसा का अंतहीन दौर जारी रहा। 16 फरवरी 2026 को एक आत्मघाती हमलावर ने 11 पाकिस्तानी सुरक्षाकर्मियों को मौत के घाट उतार दिया। बौखलाए इस्लामाबाद ने 22 फरवरी को अफ़ग़ानिस्तान के पूर्वी और दक्षिणी हिस्सों में आतंकी शिविरों पर बमबारी की, जिसमें नागरिकों सहित 18 अफ़ग़ान मारे गए। इसी के प्रतिशोध में तालिबान ने वह कदम उठाया जिसने दोनों देशों को युद्ध की दहलीज पर लाकर खड़ा कर दिया।

'गुलामी की जंजीरों' से लेकर ताबूतों की कतार तक: एक कड़वा यथार्थ

आज से ठीक पांच साल पीछे मुड़कर देखें। अगस्त 2021 में जब अमेरिकी सेना काबुल से वापस लौटी और तालिबान ने राष्ट्रपति भवन पर कब्ज़ा किया, तो इस्लामाबाद में जश्न का माहौल था। पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री इमरान खान ने सार्वजनिक रूप से कहा था कि अफ़ग़ानों ने गुलामी की जंजीरें तोड़ दी हैं। पाकिस्तान को मुगालता था कि काबुल में उसकी अपनी कठपुतली सरकार स्थापित हो गई है।

लेकिन यह मुगालता जल्द ही टूट गया। सत्ता में आते ही अफ़ग़ान तालिबान ने पाकिस्तान द्वारा खींची गई 1,622 मील लंबी 'डूरंड लाइन' को मानने से साफ इनकार कर दिया, जिसे अफ़ग़ान राष्ट्रवाद हमेशा से खारिज करता आया है। उधर, टीटीपी ने 2022 के अंत में पाकिस्तानी सरकार के साथ संघर्ष विराम खत्म कर दिया और हमले तेज़ कर दिए। सीएनएन के आंकड़ों के मुताबिक, 2025 में पाकिस्तान में आतंकी हमलों में 1,200 से अधिक लोग मारे गए—यह संख्या 2021 के मुकाबले दोगुनी से भी अधिक थी।

जब पाकिस्तान की सेना टीटीपी को काबू करने में

नाकाम रही, तो उसने इसका गुस्सा अफ़ग़ान शरणार्थियों पर निकाला। 2023 से शुरू हुए एक क्रूर सामूहिक निष्कासन अभियान के तहत, केवल 2025 के वर्ष में पाकिस्तान ने 10 लाख से अधिक अफ़ग़ानों को वापस अफ़ग़ानिस्तान खदेड़ दिया और अक्टूबर में अपनी सीमा को पूरी तरह सील कर दिया। शरणार्थियों को भू-राजनीतिक मोहरे की तरह इस्तेमाल करने की इस नीति ने काबुल और इस्लामाबाद के बीच नफरत की खाई को इतना गहरा कर दिया जिसे पाटना अब असंभव लगता है।

बीजिंग का 'सिल्क रूट', मॉस्को का दांव और नई दिल्ली की 'स्मार्ट प्लेबुक'

अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान की यह लड़ाई शून्य में नहीं लड़ी जा रही है। शीत युद्ध के दौर से ही इस इलाके में महाशक्तियों का दखल रहा है और 2026 में भी यह जारी है। चीन, रूस और भारत इस पूरे घटनाक्रम पर बाज़ जैसी नज़र गड़ाए हुए हैं।

चीन की चिंता सबसे बड़ी है। पाकिस्तान परमाणु-संपन्न देश है और चीन उसका सबसे बड़ा रक्षा व व्यापारिक साझेदार है। दोनों देश चीन के महात्वाकांक्षी 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' का हिस्सा हैं। विशेष रूप से 65 अरब डॉलर का चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा बीजिंग के लिए नाक का सवाल है। पाकिस्तान में बढ़ती अस्थिरता और टीटीपी के निशाने पर आते चीनी नागरिक, शी जिनपिंग के लिए एक बुरा सपना बन चुके हैं। इसलिए चीन हर हाल में इस युद्ध को शांत कराने के लिए मध्यस्थता की पेशकश कर रहा है। 4 मार्च 2026 को अफ़ग़ान विदेश मंत्री और चीनी राजदूत की मुलाकात इसी छटपटाहट का नतीजा थी।

दूसरी ओर, पाकिस्तान के रक्षा मंत्री ख्वाजा आसिफ अपनी नाकामी छुपाने के लिए चिर-परिचित अंदाज़ में अफ़ग़ानिस्तान को भारत का प्रॉक्सी बता चुके हैं। उनका आरोप है कि भारत टीटीपी को पाल रहा है। हालांकि यह पाकिस्तान का पुराना रोना है, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि नई दिल्ली ने 2021 के बाद अफ़ग़ानिस्तान को लेकर अपनी कूटनीति में गज़ब का रणनीतिक रीसेट किया है। 2022 में काबुल में अपना दूतावास फिर से खोलने से लेकर, अक्टूबर 2025 में नई दिल्ली में अफ़ग़ान तालिबान के राजनयिक प्रतिनिधिमंडल का प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा स्वागत किया जाना—यह दर्शाता है कि भारत एक व्यावहारिक नीति अपना रहा है। पाकिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान की दुश्मनी, भू-रणनीतिक रूप से भारत के लिए एक सुविधाजनक स्थिति पैदा करती है।

अमेरिका और भारत की बढ़ती नज़दीकियों के जवाब में रूस ने एक बेहद चौंकाने वाला दांव चला। जुलाई 2025 में, व्लादिमीर पुतिन के रूस ने अफ़ग़ानिस्तान की तालिबान हुकूमत को औपचारिक रूप से मान्यता दे दी। ऐसा करने वाला रूस दुनिया का पहला देश बन गया। कतर और सऊदी अरब जैसे मिडिल पावर देश भी अपनी अहमियत बढ़ाने के लिए मध्यस्थता की होड़ में हैं। स्टिमसन सेंटर के दक्षिण एशिया कार्यक्रम के वरिष्ठ फेलो डैनियल मार्की के अनुसार, अमेरिका के जाने के बाद इन देशों के पास काबुल के साथ काम करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। शुरुआत में उनकी रणनीति इस नई तालिबान सरकार पर सामूहिक रूप से कूटनीतिक दबाव बनाने की थी, लेकिन अब वे अपने-अपने भू-राजनीतिक हित साध रहे हैं।

वाशिंगटन की वापसी और 'ट्रंप 2.0' का नज़रिया

भले ही अमेरिका 2021 में अफ़ग़ानिस्तान से ज़लील होकर निकल गया था, लेकिन वाशिंगटन की नज़रें इस क्षेत्र से हटी

नहीं हैं। 2025 के अंत और 2026 की शुरुआत में डोनाल्ड ट्रंप की संभावित वापसी या अमेरिकी सत्ता के बदलते समीकरणों के बीच, अमेरिकी कूटनीति का लहजा काफी आक्रामक हो गया है। ट्रंप प्रशासन के एक अधिकारी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि पाकिस्तान को तालिबान के हमलों के खिलाफ अपनी रक्षा करने का पूरा अधिकार है। अक्टूबर 2025 में डोनाल्ड ट्रंप ने अपने खास अंदाज़ में शेखी बघारते हुए कहा था कि वे इन दोनों के बीच का संघर्ष खत्म करवा सकते हैं। ट्रंप के पाकिस्तानी सेना प्रमुख जनरल सैयद असीम मुनीर के साथ करीबी संबंध जगज़ाहिर हैं। लेकिन काउंसिल ऑन फॉरेन रिलेशंस की सीनियर फेलो फराह पंडित मानती हैं कि यह स्थिति बहुत सी अनिश्चितताओं से भरी है। अमेरिका सीधा इस युद्ध में नहीं कूदेगा, लेकिन अगर चीन या रूस ने पाकिस्तान या अफ़ग़ानिस्तान को हथियारों की सप्लाई शुरू की, तो वाशिंगटन मूक दर्शक नहीं बना रहेगा। सेंटर फॉर स्ट्रैटेजिक एंड इंटरनेशनल स्टडीज के अलेक्जेंडर पामर का तर्क है कि पाकिस्तान और तालिबान के बीच युद्ध, इस्लामिक स्टेट और अल-कायदा जैसे आतंकी संगठनों को पनपने का मौका देगा, जो अमेरिका के लिए एक सीधा खतरा है।

2026 के पार: 'कोएर्सिव डिप्लोमेसी' और तबाही का अनंत चक्र

तो अब आगे क्या? क्या यह खुला युद्ध किसी बड़े क्षेत्रीय युद्ध में तब्दील होगा?

विशेषज्ञों का मानना है कि दोनों देशों के बीच तनाव में कमी या 'डी-एस्केलेशन' ही अंतिम और व्यावहारिक रास्ता है। पाकिस्तान की सैन्य क्षमता और आकार तालिबान से कहीं अधिक है, और तालिबान पहले ही विदेशी हथियारों की कमी से जूझ रहा है। लेकिन समस्या यह है कि समझौते का कोई ठोस आधार या कॉमन ग्राउंड मौजूद नहीं है। अफ़ग़ान तालिबान अपनी स्वायत्तता से समझौता नहीं करेगा और टीटीपी जैसे अपने वफादार वैचारिक भाई की पीठ में छुरा नहीं घोंपेगा। दूसरी ओर, पाकिस्तान के सेना प्रमुख असीम मुनीर टीटीपी को वह मौलिक दुश्मन घोषित कर चुके हैं जिसके साथ कोई बातचीत या सुलह संभव नहीं है।

डैनियल मार्की इस स्थिति का बहुत सटीक विश्लेषण करते हैं। वे कहते हैं कि अब इन दोनों देशों के बीच एक तरह की 'कोएर्सिव डिप्लोमेसी' (बलपूर्वक कूटनीति) का दौर चलेगा। जब बातचीत विफल होगी, तो वे तब तक लड़ेंगे जब तक लड़ना अनुत्पादक न हो जाए; और फिर मजबूरन कूटनीति का दिखावा करेंगे। यह एक खतरनाक चक्र पैदा करेगा।

यह कोई स्थायी समाधान नहीं है; यह एक ऐसा अनंत चक्र है जो डूरंड लाइन के दोनों ओर केवल खून, विस्थापन और तबाही ही पैदा करेगा। पाकिस्तान आज जिस आग में झुलस रहा है, वह किसी विदेशी ताक़त ने नहीं लगाई है। यह उस 'सामरिक गहराई' की सनक का सीधा परिणाम है, जिसमें राज्य समर्थित आतंकवाद को एक टूल की तरह इस्तेमाल किया गया था। सांप पालने वाले अक्सर इसी मुगालते में रहते हैं कि सांप केवल पड़ोसियों को डसेगा, लेकिन 2026 का सच यही है कि अब वह सांप अपने ही आका के बेडरूम में घुस चुका है और उसे डसने को पूरी तरह तैयार है।

(यह आलेख मूल रूप से काउंसिल ऑन फॉरेन रिलेशंस द्वारा क्लारा फॉन्ग के लेखन के आधार पर प्रकाशित किया गया था, जिसे 'कल्ट करंट' के पाठकों के लिए समकालीन भू-राजनीतिक विश्लेषण और विशेष संपादकीय शैली में पुनर्लिखित किया गया है।)

मिडिल पावर डिप्लोमेसी का उदय

कनाडा के प्रधानमंत्री मार्क कार्नी का हालिया इंडो-पैसिफिक दौरा केवल एक सामान्य कूटनीतिक यात्रा नहीं है। यह बदलती वैश्विक राजनीति में उभरती 'मिडिल पावर डिप्लोमेसी' का संकेत है, जो महाशक्तियों के प्रभुत्व को चुनौती देते हुए नई रणनीतिक व्यवस्थाओं को जन्म दे सकती है।

कनाडा के प्रधानमंत्री मार्क कार्नी हाल ही में भारत, ऑस्ट्रेलिया और जापान के एक सप्ताह लंबे कूटनीतिक दौरे पर निकले हैं। पहली नज़र में यह किसी राष्ट्राध्यक्ष का एक सामान्य विदेश दौरा लग सकता है, लेकिन वैश्विक भू-राजनीति के बिसात पर यह एक ऐसा भूचाल है जिसकी कल्पना महज़ एक साल पहले तक असंभव थी। ज़रा सोचिए, उत्तरी अमेरिका का एक प्रमुख देश—जो दशकों से वाशिंगटन के साए में पलता रहा हो—अचानक इंडो-पैसिफिक की तीन सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के साथ मिलकर व्यापारिक सौदे कर रहा है और अमेरिका पर अपनी निर्भरता खत्म करने की जद्दोजहद में जुटा है। यह दृश्य केवल एक कूटनीतिक छटपटाहट नहीं है; यह इस बात का सबसे मुखर ऐलान है कि दुनिया में अब 'मिडिल पावर्स' (मध्यम दर्जे की शक्तियां) का एक नया और आक्रामक युग शुरू हो चुका है।आजकल कूटनीतिक गलियारों में 'मिडिल पावर डिप्लोमेसी' शब्द हर जगह गूंज रहा है।

दावोस का वह ऐतिहासिक शंखनाद: 'मेज पर नहीं, तो मेन्यू में'

मिडिल पावर्स के एकजुट होने और एक नया गुट बनाने का यह विचार सबसे पहले इसी साल स्विट्जरलैंड के दावोस में आयोजित 'वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम' के मंच से प्रधानमंत्री मार्क कार्नी ने रखा था। समकालीन अंतरराष्ट्रीय संबंधों के इतिहास में इसे एक 'वाटरशेड मोमेंट' (निर्णायक मोड़) माना जाएगा। यह कोई सामान्य भाषण नहीं था। अमेरिका का सबसे करीबी सहयोगी और उसका निकटतम पड़ोसी दुनिया के सबसे बड़े आर्थिक मंच पर खड़ा होता है और बेबाकी से यह घोषणा करता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बनी 'उदारवादी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था' (लिबरल इंटरनेशनल ऑर्डर) अब पूरी तरह से टूट चुकी है। और इसका हत्यारा कोई और नहीं, बल्कि खुद इसका निर्माता—संयुक्त राज्य अमेरिका—है।

कार्नी ने इसे आपसी सहयोग और गठबंधन निर्माण का नाम दिया। उन्होंने एक बेहद मारक मुहावरे का इस्तेमाल करते हुए कहा, अगर आप बातचीत की मेज पर नहीं बैठे हैं, तो यकीन मानिए आप उस मेज के मेन्यू कार्ड का हिस्सा हैं। लेकिन शब्दों के इस आवरण के पीछे, कार्नी का यह भाषण असल में एक 'कॉल टू आर्म्स' (युद्ध का आह्वान) था। अगर दुनिया की मिडिल पावर्स इस आह्वान को पूरी तरह स्वीकार कर लेती हैं, तो इसका सीधा अर्थ होगा अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था का पूरी तरह से बिखर जाना, कई नई और आपस में टकराती हुई व्यवस्थाओं का जन्म लेना, और एक ऐसी दुनिया का निर्माण जो आज से कहीं अधिक खतरनाक और अनिश्चित होगी।

आखिर क्या हैं ये 'मिडिल पावर्स' और इनका तिलिस्म?

कार्नी के इस सिद्धांत (कार्नी डॉक्ट्रिन) के भविष्य को समझने के लिए, हमें सबसे पहले यह डिकोड करना होगा कि ये 'मिडिल पावर्स' आखिर हैं कौन और ये अचानक इतनी प्रासंगिक क्यों हो गई हैं?

नीति-निर्माण की दुनिया में, मिडिल पावर्स अक्सर अपनी परिभाषा खुद गढ़ती हैं। ऑस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे देश दशकों से खुद को इसी श्रेणी में रखते आए हैं। इन देशों ने दुनिया के सामने अपनी एक ऐसी 'सॉफ्ट' छवि बनाई है जो सुकून देने वाली लगती है। ये ऐसे देश हैं जिनके पास मध्यम दर्जे की सैन्य ताकत और अर्थव्यवस्था है। ये खुद को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'भलाई करने वाले' (डू-गुडर्स) के रूप में पेश करते हैं—ऐसे देश जो वैश्विक स्तर पर उदारवादी मूल्यों और मानवाधिकारों को लेकर प्रतिबद्ध हैं (कम से कम बयानों में तो ऐसा ही लगता है, भले ही ज़मीनी हकीकत कुछ और हो)। अब अगर ऐसे 'सभ्य' और 'जिम्मेदार' देश एक साथ आकर अमेरिका के पागलपन और चीन की आक्रामकता से दुनिया को बचाने का दावा करें, तो भला किसे आपत्ति हो सकती है?

मंजरी चटर्जी मिलर

लेकिन अकादमिक और रणनीतिक विचारक इस तिलिस्म को अलग नज़रिए से देखते हैं। यद्यपि विशेषज्ञों के बीच मिडिल पावर्स की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है, लेकिन इस बात पर आम

सहमति है कि इन देशों के समूह का आकार या ज़मीन के क्षेत्रफल से कोई खास लेना-देना नहीं है। इसका कुछ हद तक संबंध उनकी आर्थिक और सैन्य क्षमता से है, लेकिन 'नैतिक मूल्यों' से इसका दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं है।

विचारधारा का अंत और विशुद्ध हितों की राजनीति

इसलिए, मार्क कार्नी के इस आह्वान को किसी 'पवित्र मिशन' की तरह नहीं देखा जाना चाहिए। यह उम्मीद करना बेमानी है कि पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र मिलकर उस खालीपन को भर देंगे जो अमेरिका के पीछे हटने से पैदा हुआ है। इसके बजाय, यह दुनिया भर की लोकतांत्रिक और गैर-लोकतांत्रिक, दोनों तरह की मिडिल पावर्स के लिए एक 'इमरजेंसी सायरन' है कि वे आक्रामक महाशक्तियों के सामने अपने अस्तित्व को बचाने के लिए एकजुट हों।

इस नए प्रस्तावित गठबंधन का कैनवास बेहद विशाल और विरोधाभासों से भरा है। इसमें कनाडा जैसा विशाल देश शामिल है, जो लोकतंत्र और मानवाधिकारों को अपनी विदेश नीति का मूल मानता है। लेकिन इसी छतरी के नीचे तुर्की भी आता है—एक मध्यम आकार की अर्थव्यवस्था जो वैश्विक आर्थिक मंचों पर अपना दबदबा बढ़ाने और पश्चिम तथा मुस्लिम जगत के बीच एक 'ब्रोकर' की भूमिका निभाने की महत्वाकांक्षा रखता है। इसमें सिंगापुर जैसा बेहद छोटा लेकिन आर्थिक रूप से महाशक्तिशाली देश भी शामिल है, जो अपने आकार से कहीं अधिक कूटनीतिक वजन रखता है।

और सबसे महत्वपूर्ण बात, इस गठजोड़ में भारत भी शामिल है। भारत एक ऐसा देश है जिसने लगातार उन पश्चिमी शासन संरचनाओं और वैश्विक आर्थिक व्यवस्थाओं को बदलने की वकालत की है, जिन्हें वह 'ग्लोबल साउथ' (विकासशील दुनिया) के खिलाफ मानता है।

व्यवस्था के 'रखवालों' का बागी हो जाना

कार्नी के इस आह्वान की गंभीरता को समझने के लिए हमें इतिहास के एक पन्ने को पलटना होगा। मिडिल पावर्स का मूल चरित्र कभी भी 'संशोधनवादी' (रिविजनिस्ट) या व्यवस्था को पलटने वाला नहीं रहा है। उन्होंने हमेशा से स्थापित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था पर भरोसा किया है और उसका हिस्सा बने रहे हैं। यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका ने जिस उदारवादी और 'नियम-आधारित व्यवस्था' (रूल्स-बेस्ड ऑर्डर) का निर्माण किया, वह अकेले उसके बूते की बात नहीं थी। भले ही अमेरिका कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, इस व्यवस्था को चलाने के लिए उसे मिडिल पावर्स की मौन सहमति और सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता थी।

यहां तक कि भारत जैसी एक स्वतंत्र और मजबूत मिडिल पावर, जिसने समय-समय पर पश्चिमी नियमों पर सवाल उठाए हैं, उसने भी कभी इसके समानांतर किसी 'वैकल्पिक व्यवस्था' का समर्थन नहीं किया। शीत युद्ध के दौर में जब सोवियत संघ भारत का सबसे करीबी दोस्त था और अमेरिका से रिश्ते तल्ख थे, तब भी नई दिल्ली ने सोवियत नेतृत्व वाली किसी वैश्विक व्यवस्था का आंख मूंदकर समर्थन नहीं किया। ठीक वैसे ही, आज भारत किसी भी चीन-नेतृत्व वाली व्यवस्था को सिरे से खारिज करता है।

लेकिन आज स्थिति खौफनाक मोड़ ले चुकी है। जिन मिडिल पावर्स ने दशकों तक इस वैश्विक व्यवस्था को अपने कंधों पर टिकाए रखा, अगर वे ही इससे मुंह मोड़कर अपने अलग गुट बनाने लगें, तो इसके परिणाम भयावह होंगे। हकीकत यह है कि अगर ये देश इस व्यवस्था से अपना 'बाय-इन' (समर्थन) वापस ले लेते हैं, तो यह पूरी इमारत ताश के पत्तों की तरह ढह जाएगी। अगर ये मिडिल पावर्स अपने द्विपक्षीय और त्रिपक्षीय मतभेदों को भुलाकर एक ताकतवर गुट बना लें, तो वे दुनिया को एक नए विखंडन की ओर धकेल देंगी। व्यापार से लेकर सुरक्षा और पर्यावरण तक, दुनिया कई छोटे-छोटे, एक-दूसरे से टकराने वाले गुटों में बंट जाएगी।

भारत-ईयू का 'मदर ऑफ ऑल डील्स'

यह विखंडन कैसे होगा, इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण भारत और यूरोपीय संघ (ईयू) के बीच हाल ही में हुआ ऐतिहासिक व्यापारिक समझौता है, जिसे 'मदर ऑफ ऑल डील्स' कहा जा रहा है।

पिछले दो दशकों से भारत ने अमेरिका के साथ अपनी रणनीतिक साझेदारी को गहरा करने में भारी कूटनीतिक ऊर्जा निवेश की थी। लेकिन 2025 में जब डोनाल्ड ट्रंप दूसरी बार अमेरिकी राष्ट्रपति बनकर व्हाइट हाउस पहुंचे, तो उन्होंने भारत को एक गहरा सदमा दिया। 2022 के यूक्रेन युद्ध के बाद से भारत द्वारा रूस से खरीदे जा रहे सस्ते तेल और अन्य मनगढ़ंत कारणों का हवाला देते हुए, ट्रंप प्रशासन ने भारत पर 50 प्रतिशत का भारी-भरकम टैरिफ (सीमा शुल्क) थोप दिया।

इस अमेरिकी झटके के एक साल के भीतर ही, भारत ने अपनी ऐतिहासिक 'संरक्षणवादी' (प्रोटेक्शनिस्ट) छवि को तोड़ते हुए 27 जनवरी को यूरोपीय संघ के साथ एक व्यापक मुक्त व्यापार समझौता (एफटीए) कर लिया। यह महज़ एक आर्थिक सौदा नहीं, बल्कि एक भू-राजनीतिक भूचाल है। यूरोपीय संघ के नियम और कानून—चाहे वे उत्पाद की गुणवत्ता हों, स्वास्थ्य और सुरक्षा के मानक हों, या फिर डिजिटल तकनीक के नियम हों—अमेरिकी नियमों से बिल्कुल अलग हैं।

अगर भारत अपने निर्यात को यूरोपीय बाज़ार के हिसाब से ढाल लेता है और ईयू के कड़े नियमों को अपना मानक बना लेता है, तो आने वाले समय में यूरोप ही भारत का प्राथमिक और सबसे बड़ा बाज़ार बन जाएगा। भारत और ईयू का यह समझौता इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि दुनिया की सबसे बड़ी मिडिल पावर अब अमेरिका से दूर जा रही है। भारत अब अपने भविष्य के व्यापारिक रिश्तों को अमेरिकी मानकों

के बजाय यूरोपीय नियमों के इर्द-गिर्द बुन रहा है। अमेरिका के लिए यह एक ऐसा कूटनीतिक और आर्थिक नुकसान है जिसकी भरपाई शायद ही कभी हो सके।

ग्रीनलैंड संकट और नाटो में दरार

यही कहानी वैश्विक सुरक्षा मानकों की भी है। इस साल के म्यूनिख सुरक्षा सम्मेलन में ट्रंप की उस सनक भरी धमकी की सबसे ज्यादा चर्चा रही, जिसमें उन्होंने ग्रीनलैंड पर कब्ज़ा करने या उसे 'खरीदने' की बात कही थी। सुनने में यह किसी अड़ियल साम्राज्यवादी का प्रलाप लग सकता है, लेकिन इसके परिणाम बेहद गंभीर हैं।

इस धमकी के जवाब में कनाडा ने तुरंत ग्रीनलैंड में अपना वाणिज्य दूतावास खोल दिया और आर्कटिक क्षेत्र की सुरक्षा के लिए डेनमार्क के साथ एक रक्षा सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। हालांकि आर्कटिक में सहयोग की नींव ट्रंप की धमकियों से पहले ही रखी जा चुकी थी, लेकिन अब इन कदमों ने एक सीधा 'एंटी-अमेरिकन' रूप ले लिया है। अगर ट्रंप अपनी धमकी पर अमल करने की कोशिश भी करते हैं, तो यह सीधे तौर पर नाटो के ताबूत में आखिरी कील साबित होगा।

महाशक्तियों का दिवालियापन

यह सब रातों-रात नहीं हुआ है। सच तो यह है कि आज की दोनों प्रमुख महाशक्तियों—अमेरिका और चीन—ने इन मिडिल पावर्स के पास कोई और विकल्प छोड़ा ही नहीं है। वाशिंगटन और बीजिंग ने इन देशों को किसी ऐसी नई, स्थिर और लाभकारी व्यवस्था का प्रस्ताव नहीं दिया है जिस पर वे भरोसा कर सकें।

एक ओर अमेरिका उस अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को अपने ही हाथों से तबाह करने पर तुला है, जिसे उसने खुद दशकों की मेहनत से गढ़ा था। अमेरिका अब जिस नई 'व्यवस्था' की वकालत कर रहा है, वह असल में 19वीं सदी के पुराने, क्रूर साम्राज्यवाद की वापसी है। ईरान पर अमेरिका के एकतरफा और बिना उकसावे वाले सैन्य हमले इस बात की पुष्टि करते हैं कि अब वह एक ऐसी महाशक्ति बन चुका है जो किसी भी पुराने नियम या मर्यादा को मानने के लिए तैयार नहीं है। यह साम्राज्यवादी रवैया दुनिया के अधिकांश देशों के लिए, विशेषकर ग्लोबल साउथ की उन मिडिल पावर्स के लिए जो कॉलोनियलिज्म (उपनिवेशवाद) के गहरे ज़ख्म सह चुके हैं, पूरी तरह से अस्वीकार्य है।

दूसरी ओर, चीन है। बीजिंग ने आज तक यह स्पष्ट नहीं किया है कि चीन के नेतृत्व वाली अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था आखिर दिखेगी कैसी? चीन के पास दुनिया को देने के लिए केवल सत्तावादी (ऑथोरिटेरियन) नियम और अपारदर्शी कर्ज़ का जाल है। दुनिया के अधिकांश देश, विशेषकर एशिया और इंडो-पैसिफिक की मिडिल पावर्स, चीन पर रत्ती भर भी भरोसा नहीं करतीं और उसके साथ अपने रिश्तों को लेकर हमेशा सशंकित रहती हैं।

उदारवादी व्यवस्था का आखिरी मर्सिया

महाशक्तियों की इस अंधी प्रतिद्वंद्विता और विशेष रूप से अमेरिका के आक्रामक और सनकी रवैये ने दुनिया भर की मिडिल पावर्स को एक बेहद खतरनाक और पथरीले रास्ते पर धकेल दिया है। दावोस के मंच पर मार्क कार्नी ने वह कहने का साहस दिखाया, जो दुनिया भर की राजधानियों में बंद कमरों के भीतर पहले से ही सोचा और बुना जा रहा था।

लेकिन इन मिडिल पावर्स के पास एक ताकत ज़रूर है। उनके पास इतनी क्षमता है कि वे दुनिया भर में छोटे-छोटे, एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने वाले और आपस में टकराने वाले कई नए गुट या 'समानांतर व्यवस्थाएं' खड़ी कर सकें। और जिस दिन यह प्रक्रिया पूरी होगी, उसी दिन ये मिडिल पावर्स अपने ही हाथों से उस उदारवादी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था और अमेरिकी आधिपत्य का आखिरी मर्सिया (एपिथैफ) लिख देंगी, जिसने पिछले अस्सी सालों तक इस दुनिया को चलाए रखा था। भविष्य अब बहुध्रुवीय नहीं, बल्कि बहु-विखंडित होने जा रहा है।

(यह आलेख मूल रूप से 'फॉरेन पॉलिसी' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, जिसे कल्ट करंट के पाठकों के लिए समकालीन भू-राजनीतिक विश्लेषण और विशेष संपादकीय शैली में पुनर्लिखित किया गया है। आलेख में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं और कल्ट करंट की संपादकीय लाइन का प्रतिनिधित्व नहीं करते।)

सत्ता का अंधा कुआं

एपस्टीन कोई अपवाद नहीं, एक व्यवस्था था। सत्ता, पूंजी और बौद्धिक प्रतिष्ठा के गठजोड़ ने यौन अपराध को वैचारिक आवरण दिया। 2026 की फाइलें उजागर करती हैं उस अंधे कुएं को, जहां नैतिकता जानबूझकर दफन की गई।

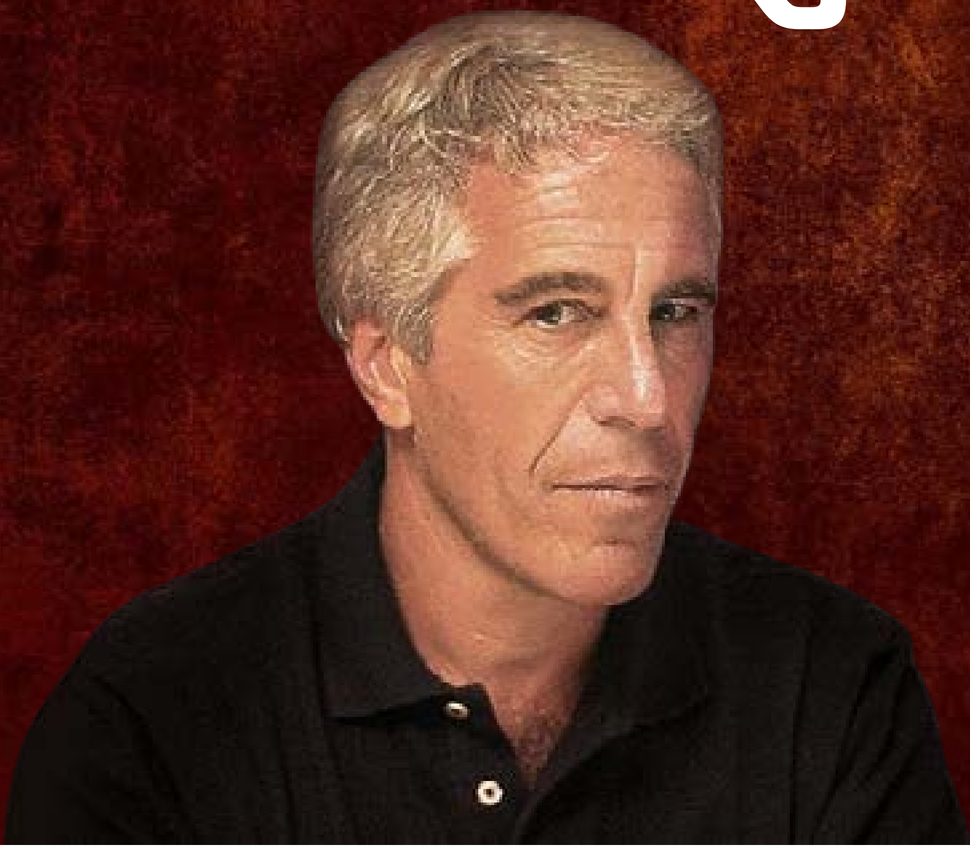

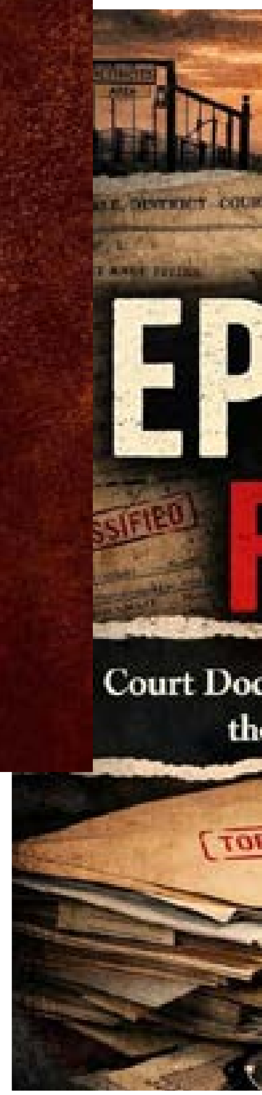

क्या 'दैवीय चेतना' के नाम पर चीखों को दबाया जा सकता है? यह कहानी जेफरी एपस्टीन के उस खौफनाक नेटवर्क की परतें खोलती है, जिसने अरबपतियों और राजनेताओं को ढाल बनाकर मासूमों का शिकार किया। 2026 के दस्तावेज़ों से निकला यह सच, वैश्विक सत्ता के गलियारों में दफन नैतिक सड़ांध का एक ऐसा दस्तावेज़ है जो रोंगटे खड़े कर देगा

8 मार्च, 2017 की वह ई-मेल बातचीत आज भी रोंगटे खड़े कर देती है। एक तरफ वैकल्पिक चिकित्सा के विश्वविख्यात पैरोकार दीपक चोपड़ा थे और दूसरी तरफ अमेरिकी फाइनेंसर और यौन अपराधी जेफरी एपस्टीन। संवाद का विषय था—ब्रम्हांड, चेतना और कोशिका का अस्तित्व। लेकिन इस दार्शनिक विमर्श की परतों के नीचे जो छिपा था, वह किसी भी सभ्य समाज के लिए दुःस्वप्न जैसा था। जब चोपड़ा लिखते हैं कि हसीन लड़कियां तब चैतन्य होती हैं जब उनकी चीख निकल आती है और एपस्टीन उसे दैवीय चेतना करार देता है, तो यह केवल दो व्यक्तियों का व्यक्तिगत संवाद नहीं रह जाता। यह उस वैश्विक अभिजात वर्ग की सामूहिक विकृति का दस्तावेज बन जाता है, जिसने सत्ता और पैसे के अहंकार में नैतिकता की हर परिभाषा को ही बदल दिया।

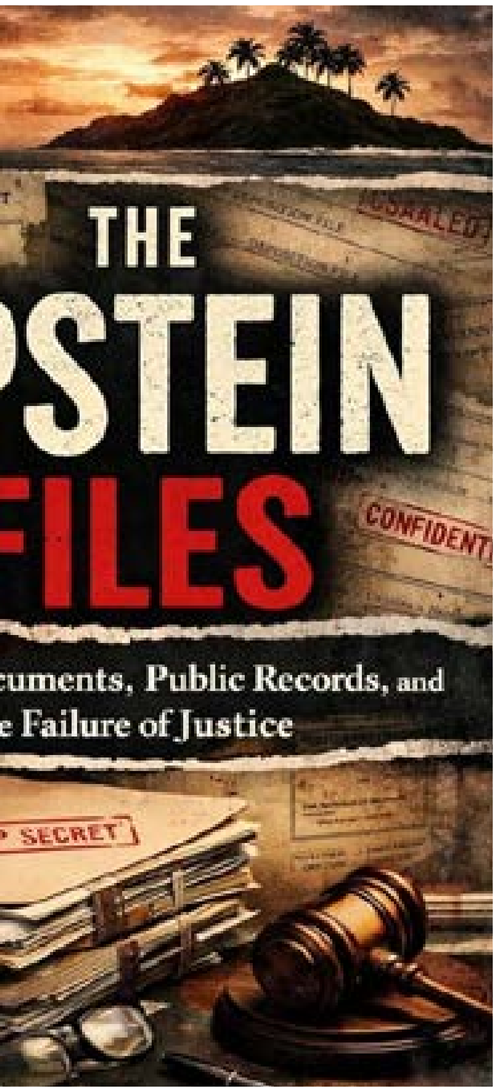

जेफरी एपस्टीन कोई मामूली अपराधी नहीं था। वह उस 'सड़ांध' का प्रतीक था जो आधुनिक पूंजीवाद और सत्ता के गलियारों में गहराई तक धंसी हुई है। 2026 में जारी हुई 'एपस्टीन फाइलों' ने साबित कर दिया है कि यह केवल एक व्यक्ति का जुर्म नहीं था, बल्कि यह एक व्यवस्थित तंत्र था, जिसमें राष्ट्रपति, शाही परिवारों के राजकुमार, वैज्ञानिक और अरबपति—सभी शामिल थे।

एक शिकारी का उदय और 'मैनीपुलेशन' का विज्ञान

ब्रुकलिन के एक साधारण मोहल्ले से निकलकर वॉल स्ट्रीट के 'मास्टर ऑफ द यूनिवर्स' बनने तक का एपस्टीन का सफर 'अमेरिकी सपने' का काला संस्करण है। कॉलेज की पढ़ाई अधूरी छोड़ने के बावजूद डाल्टन स्कूल जैसे एलीट संस्थान में गणित पढ़ाना और फिर बेयर स्टर्न्स जैसी निवेश फर्म में ऊंचे पद पर पहुंचना, एपस्टीन की उस योग्यता को दर्शाता है जिसे वह खुद 'तकनीकी फरेब' कहता था।

एपस्टीन की असली ताकत उसकी वित्तीय समझ में नहीं, बल्कि 'इंसानी कमजोरी' को पकड़ने की कला में थी। उसने समझा कि सत्तावान लोग और बौद्धिक सितारे अक्सर नैतिक बंधनों से ऊब जाते हैं और उन्हें अपनी कुंठाओं को शांत करने के लिए एक 'सुरक्षित एकांत' चाहिए होता है। एपस्टीन ने वही एकांत मुहैया कराया—अपने मैनहट्टन मेंशन से लेकर कैरिबियन के 'ऑर्जी आइलैंड' तक। गिसलेन मैक्सवेल के रूप में उसे वह 'हमकदम' मिली जिसने रसूखदार बिरादरी के दरवाजे उसके लिए खोल दिए। मैक्सवेल केवल उसकी सहयोगी नहीं थी, वह उस 'ड्रैगन' की सरगना थी जो नाबालिग लड़कियों को 'खरीदने' और उन्हें एपस्टीन के सामने परोसने का काम करती थी।

बौद्धिक ढाल और साख का व्यापार

एपस्टीन की सबसे बड़ी चतुराई यह थी कि उसने अपने अपराधों को 'अकादमिक और वैज्ञानिक शोध' के लबादे में छिपा लिया। वह दुनिया के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, भाषाविदों और विचारकों को भारी-भरकम चेक देकर अपनी साख खरीदता था। नोम चॉम्स्की जैसे विद्वान जब उसे मीडिया के हिस्टीरिया से बचने की सलाह देते हैं, तो यह समझ आता है कि एपस्टीन ने बौद्धिक जगत को किस हद तक अपने प्रभाव में ले रखा था।

उसने अरबों डॉलर खर्च करके एक ऐसा 'ईकोसिस्टम' बनाया जहां उसके जुर्मों को 'सनक' या 'मिस्टेक' कहकर खारिज किया जा सके। शैक्षणिक संस्थानों को दी गई फंडिंग असल में उन लड़कियों को फंसाने का जरिया थी जो उच्च शिक्षा का सपना देखती थीं। एनी फार्मर और मारिया फार्मर जैसी लड़कियों को पढ़ाई में मदद का वादा करके उस नर्क में धकेला गया जहां से लौटना मुमकिन नहीं था।

2026 की फाइलें और 'सेलेक्टिव ट्रांसपेरेंसी' का खेल

2026 में जब एपस्टीन की फाइलें सार्वजनिक हुईं, तो दुनिया को उम्मीद थी कि अब दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा। लेकिन अमेरिकी राजनीति ने यहां भी अपना खेल दिखाया। डोनाल्ड ट्रंप, जिन्होंने चुनाव प्रचार में इन फाइलों

को सार्वजनिक करने का वादा किया था, सत्ता में आने के बाद रक्षात्मक मुद्रा में आ गए। 'एपस्टीन फाइल्स ट्रांसपेरेंसी एक्ट' कानून तो बना, लेकिन न्याय विभाग ने उन नामों को हटाने की हर संभव कोशिश की जो ट्रंप के करीबी सहयोगियों या खुद उनके रसूख को ठेस पहुंचा सकते थे।

इन फाइलों में बिल क्लिंटन, बिल गेट्स, एलन मस्क से लेकर प्रिंस एंड्रयू जैसे नामों की मौजूदगी यह बताती है कि एपस्टीन का 'लोलिता एक्सप्रेस' विमान केवल एक हवाई जहाज नहीं था, वह वैश्विक सत्ता के अनैतिक संरेखण का केंद्र था। यह विडंबना ही है कि ट्रंप प्रशासन ने उन फाइलों को जारी करने में सबसे ज्यादा विरोध किया जो उनके 'मागा' समर्थकों की मांग थी। यह 'सत्ता की सामूहिक आत्मरक्षा' का सबसे बड़ा उदाहरण है।

यूरोप का एक्शन बनाम अमेरिका का सन्नाटा

एपस्टीन फाइलों के वैश्विक प्रभाव में एक स्पष्ट विभाजन दिखाई देता है। यूरोप में जहां नैतिकता और जवाबदेही के दबाव में इस्तीफों की झड़ी लग गई, वहीं अमेरिका में 'पार्टी करना अपराध नहीं है' जैसे तर्क देकर रसूखदारों को बचाने की कोशिश की गई।

ब्रिटेन के प्रिंस एंड्रयू को अपनी शाही उपाधियां खोनी पड़ीं और उन्हें महल से बाहर कर दिया गया। फ्रांस में जैक लैंग और स्लोवाकिया में मिरोस्लाव लायचाक जैसे दिग्गजों को पद छोड़ने पड़े। लेकिन अमेरिका में, जहां एपस्टीन ने अपना मुख्य नेटवर्क चलाया, वहां हॉवर्ड लुटनिक जैसे लोग पद पर बने रहे, भले ही उनके झूठ पकड़े गए हों। यह आधुनिक अमेरिका के उस 'नैतिक क्षरण' को दिखाता है जहां झूठ अब राजनीति का

अभिन्न हिस्सा बन चुका है।

'मोलेस्टेशन पिरामिड स्कीम' की आपबीती

इस पूरे घटनाक्रम में सबसे महत्वपूर्ण आवाज उन पीड़ितों की है जिन्हें वर्षों तक 'सैक्स स्लैव' बनाकर रखा गया। सितंबर 2025 में कैपिटल हिल पर मरीना लैसरडा की गवाही ने उस 'हैवानियत' को सार्वजनिक किया जिसे एपस्टीन ने मसाज का नाम दिया था। लैसरडा और हेली रॉबसन की कहानियां एक जैसा 'पैटर्न' दिखाती हैं—गरीबी और बेबसी का फायदा उठाकर नाबालिगों को पहले पैसों का लालच देना, फिर भरोसा जीतना और अंततः उन्हें ब्लैकमेल करके एक ऐसे दुष्चक्र में डाल देना जहाँ वे खुद अन्य लड़कियों को लाने के लिए मजबूर हो जाएं।

जांचकर्ताओं ने इसे सही मायनों में 'मोलेस्टेशन पिरामिड स्कीम' कहा है। यह तंत्र किसी एक अपराधी के दिमाग की उपज नहीं था, बल्कि यह उस समाज की देन था जिसने पैसे को ही परमेश्वर मान लिया था। एपस्टीन सोशियोपैथ था, लेकिन उसे पालने-पोसने वाले वे लोग थे जो खुद को 'सभ्यता का प्रहरी' कहते थे।

देर-पूंजीवाद और नैतिकता का अंत

पेरिस के अमेरिकन यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर फिलिप गोलुब का विश्लेषण इस आलेख के केंद्र में है। एपस्टीन का उभार वॉल स्ट्रीट के उस 'घमंड और कदाचार' की लहर के बीच हुआ जहां वित्तीय इंजीनियरिंग ने नैतिकता को पीछे छोड़ दिया था। यह 'देर-पूंजीवाद' का वह दौर है जहां निवेश बैंकर 'टाइटन्स' और 'मास्टर्स ऑफ द यूनिवर्स' बन गए थे। कोकीन से सजी यौन पार्टियां और नाबालिगों का शोषण इस विकृत

सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न हिस्सा थीं। एपस्टीन ने बस इस विकृति को एक 'सर्विस' के रूप में पेश किया।

भारतीय राजनीति में 'एपस्टीन फाइलों' का भूचाल

वैश्विक सत्ता केंद्रों को हिलाने वाली इन फाइलों की लहरों से लुटियंस दिल्ली का गलियारा भी अछूता नहीं रहा। जब एपस्टीन के दस्तावेजों का एक हिस्सा सार्वजनिक हुआ, तो उसमें दर्ज एक विवादास्पद ई-मेल ने भारत के राजनीतिक तापमान को बढ़ा दिया। यह ई-मेल प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की 2017 की ऐतिहासिक इजरायल यात्रा के संदर्भ में था, जिसमें एपस्टीन ने 'हसीन लड़कियों' और सामरिक कूटनीति पर

कुछ घटिया टिप्पणियां की थीं। भारतीय विपक्ष, विशेष रूप से कांग्रेस ने इसे हाथो-हाथ लिया। संसद के बाहर प्रदर्शनों का दौर चला और संसद के भीतर नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी ने सरकार को घेरते हुए इसे 'वैश्विक नैतिक पतन का भारतीय विस्तार' करार दिया। राहुल गांधी ने सवाल उठाया कि एक अंतरराष्ट्रीय बाल यौन अपराधी की पहुंच और उसकी टिप्पणियों के घेरे में भारतीय कूटनीति के संदर्भ कैसे आए? एक अन्य मामले में केंद्रीय मंत्री हरदीप सिंह पुरी के नाम की भी चर्चा चल पड़ी। इस राजनीतिक हमले का बचाव करने के लिए स्वयं केंद्रीय मंत्री हरदीप सिंह पुरी को प्रेस कॉन्फ्रेंस के जरिए कड़ा रुख अख्तियार करना पड़ा। पुरी ने एपस्टीन को एक सजायफ्ता अपराधी और उसकी बातों को बेसिर-पैर की बकवास बताते हुए पूरी तरह खारिज कर दिया। विदेश मंत्रालय की तीखी प्रतिक्रिया ने साफ किया कि भारत इस तरह के 'डर्टी कैंपेन' को बर्दाश्त नहीं करेगा। हालांकि, यह घटना साबित करती है कि एपस्टीन का नेटवर्क और उसकी नजरें केवल पश्चिम तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वह वैश्विक दक्षिण की उभरती शक्तियों के साथ जुड़ने और उन्हें प्रभावित करने की गुप्त मंशा रखता था।

जवाबदेही या महज़ एक दिखावा?

जेफरी एपस्टीन की न्यूयॉर्क जेल में हुई संदिग्ध मौत ने भले ही उसे कानूनी ट्रायल से बचा लिया हो, लेकिन इतिहास की अदालत में उसका फैसला हो चुका है। हालांकि, सवाल आज भी जिंदा है— क्या एपस्टीन के जाने से वह 'सिस्टम' खत्म हो गया जिसने उसे पैदा किया था? 2026 की फाइलों ने खिड़की तो खोली है, लेकिन पूरा सच अभी भी सीलबंद है।

पीड़ित महिलाओं की लड़ाई अब केवल मुआवजे की नहीं है, वह 'सच बोलने की आजादी' और 'न्याय की समानता' की है। मनोवैज्ञानिक कैथरीन स्टैमौलिस का यह कहना वाजिब है कि यह कैसा न्याय है जहां पीड़ितों के नाम सार्वजनिक हैं और अपराधियों के चेहरे सुरक्षित?

उल्लेखनीय है कि एपस्टीन फाइलें केवल एक सेक्स स्कैंडल का खुलासा नहीं हैं, बल्कि यह आधुनिक सत्ता के उस 'अंधेरे कुएं' की झलक है जहां रसूखदार लोग अपनी जवाबदेही से बचने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। जब तक सत्ता, पूंजी और विलासिता का यह अनैतिक त्रिकोण बना रहेगा, तब तक नए 'एपस्टीन' पनपते रहेंगे।

अंतिम सत्य वही है जो मरीना लैसरडा ने कहा— यह लड़ाई तब तक खत्म नहीं होती, जब तक हम यह न कहें कि यह खत्म हो गई है। 2026 का यह मोड़ इतिहास में जवाबदेही की सबसे बड़ी कसौटी है। क्या हम एक ऐसा समाज बन पाएंगे जहाँ 'चीख' को 'दैवीय चेतना' कहने वालों के लिए कोई जगह न हो?

डिजिटल संप्रभुता का भारतीय संकल्प

नई दिल्ली के भारत मंडपम में आयोजित एआई सम्मेलन ने संकेत दे दिया कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का वैश्विक नैरेटिव अब बदल रहा है। भारत केवल तकनीक का उपभोक्ता नहीं, बल्कि डिजिटल संप्रभुता और मानव-केंद्रित एआई के नए मॉडल का दावेदार बनकर उभर रहा है।

श्रीराजेश

बीते महीने गुनगुनी धूप में नई दिल्ली का 'भारत मंडपम' केवल एक सम्मेलन केंद्र नहीं, बल्कि वैश्विक एआई का एक 'न्यूरल सेंटर' (तंत्रिका केंद्र) नजर आ रहा था। पिछले महीने दिल्ली में दुनिया भर के टेक दिग्गजों, नीति निर्माताओं और स्थानीय नवाचारों का जो संगम दिखा, वह इस बात का उद्घोष है कि एआई का नैरेटिव (वृत्तांत) अब पश्चिम से खिसक कर 'ग्लोबल साउथ' (वैश्विक दक्षिण) की ओर आ गया है।

ओपन-एआई के सैम ऑल्टमैन, एनवीडिया के जेन्सेन हुआंग, गूगल के सुंदर पिचाई और माइक्रोसॉफ्ट के सत्या नडेला जैसे दिग्गजों की उपस्थिति इस बात का प्रमाण थी कि भारत अब केवल दुनिया का 'बैक-ऑफिस' नहीं रहा, बल्कि वह भविष्य की एआई प्रयोगशाला बन चुका है। यह सम्मेलन भारत की उस यात्रा का चरम बिंदु है जहाँ एक राष्ट्र 1.4 अरब लोगों की समस्याओं का समाधान स्वदेशी एआई समाधानों से करने की चुनौती स्वीकार कर रहा है।

'इंडियाएआई मिशन': संप्रभुता का डिजिटल मेनिफेस्टो

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 1.4

अरब डॉलर के 'इंडियाएआई मिशन' का जो खाका पेश किया, वह केवल एक सरकारी योजना नहीं, बल्कि भारत की 'रणनीतिक स्वायत्तता' का घोषणापत्र है। इस मिशन के केंद्र में 38,000 से अधिक ग्राफिक्स प्रोसेसिंग यूनिट्स (जीपीयू) का एक विशाल कंप्यूट इन्फ्रास्ट्रक्चर खड़ा करना है।

प्रधानमंत्री का संदेश स्पष्ट थाः भारत अब केवल 'बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग' (बीपीओ) का केंद्र बनकर संतुष्ट नहीं रहेगा, जिसने टीसीएस, इन्फोसिस और विप्रो जैसे दिग्गज दिए। अब भारत दुनिया का 'एआई ब्रेन' बनने का दावा कर रहा है। मोदी ने कहा, 'भारत के लिए एआई केवल दक्षता का साधन नहीं है; यह सामाजिक न्याय का एक उपकरण है।' उनकी दृष्टि में एआई को 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' के दर्शन पर आधारित होना चाहिए, जो केवल एक छोटे विशिष्ट वर्ग के लिए नहीं, बल्कि अंतिम व्यक्ति के कल्याण के लिए हो।

कंप्यूटिंग का लोकतंत्रीकरण: एक डॉलर से सस्ता एआई

एआई की दुनिया में सबसे बड़ी बाधा 'कंप्यूट पावर' की लागत रही है। भारत ने इस बाधा को एक क्रांतिकारी प्रहार से तोड़ दिया है। 'इंडियाएआई कंप्यूट पोर्टल' के माध्यम से स्टार्टअप्स को मात्र 67 रुपये (एक डॉलर से भी कम) प्रति घंटे की दर से जीपीयू उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

प्रधानमंत्री ने इसे एक ऐतिहासिक उदाहरण के रूप में पेश किया। उन्होंने कहा, 'जब हम एआई के 'ईंधन' को एक कप कॉफी से भी सस्ता कर देते हैं, तो हम यह सुनिश्चित करते हैं कि अगला महान एआई मॉडल सिलिकॉन वैली के बोर्डरूम में नहीं, बल्कि भारत के किसी छोटे शहर के क्यूबिकल में तैयार हो सके।'

यह कंप्यूटिंग का वह लोकतंत्रीकरण है जो भारत को ग्लोबल साउथ की बुलंद आवाज बनाता है।

टेक दिग्गजों की नजर में 'नया भारत'

सम्मेलन में वैश्विक टेक दिग्गजों के बयानों ने भारत की बदलती स्थिति को रेखांकित किया।

- **सैम ऑल्टमैन (ओपेन एआई):** ऑल्टमैन ने स्वीकार किया कि भारत अब ओपन-एआई का दूसरा सबसे बड़ा उपयोगकर्ता आधार है। उन्होंने कहा, 'भारत के पास लोग हैं, पैमाना है और वह संक्रामक उत्साह है जो उसे एक 'फुल-स्टैक एआई लीडर' बनाता है।' ऑल्टमैन का यह मानना कि भारत केवल एक 'बाजार' नहीं बल्कि एक 'साझेदार' है, वैश्विक शक्ति संतुलन में आए बदलाव को दर्शाता है।
- **सुंदर पिचाई (गूगल):** पिचाई ने भारत की एआई यात्रा को 'असाधारण' बताया। उन्होंने चेतावनी दी कि हमें 'डिजिटल डिवाइड' को 'एआई डिवाइड' में नहीं बदलने देना चाहिए। गूगल ने भारत के बुनियादी ढांचे और भाषाई एआई उपकरणों (22 भारतीय भाषाओं के लिए) में गहरे निवेश का संकल्प दोहराया।
- **सत्या नडेला (माइक्रोसाफ्ट):** नडेला ने भारत के एआई और क्लाउड इन्फ्रास्ट्रक्चर में 17.5 अरब डॉलर के रिकॉर्ड निवेश की घोषणा की। उन्होंने 2030 तक 2 करोड़ भारतीयों को एआई कौशल में प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा। नडेला ने भारत के 'ई-श्रम' प्लेटफॉर्म को डिजिटल सार्वजनिक प्रणालियों के लिए एक वैश्विक बेंचमार्क बताया।

कूटनीति की छाया:बिल गेट्स का पलायन

भले ही सम्मेलन तकनीकी और आर्थिक विमर्श पर केंद्रित था, लेकिन वैश्विक राजनीति की छाया यहाँ भी महसूस की गई। सम्मेलन के सबसे चर्चित वक्ताओं में से एक, बिल गेट्स, को अपने भाषण से कुछ घंटे पहले ही हटना पड़ा। खबरों के अनुसार, हालिया 'एपस्टीन फाइलों' के विवाद और उसमें उनके नाम की चर्चा ने उन्हें इस मंच से दूर रहने पर मजबूर कर दिया।

यह घटना दर्शाती है कि कैसे हमारे पिछले अंकों में चर्चित वैश्विक नैतिक पतन और रसूखदारों के काले कारनामे तकनीकी दुनिया के सबसे पवित्र माने जाने वाले मंचों को भी प्रभावित कर रहे हैं। हालांकि, गेट्स की अनुपस्थिति के बावजूद फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुएल मैक्रों और ब्राजील के राष्ट्रपति लूला डी सिल्वा की उपस्थिति ने सम्मेलन को एक गहरा राजनीतिक और कूटनीतिक महत्व प्रदान किया।

प्रयोगशाला से बाजार तक: नवाचार का उत्सव

भारत मंडपम का एक्सपो हॉल उन 600 से अधिक स्टार्टअप्स का गवाह बना जो बाजार के लिए तैयार समाधान पेश कर रहे थे। यहाँ एआई केवल 'हाइप' नहीं, बल्कि 'हकीकत' था।

- **स्वास्थ्य सेवा:** Qure.ai जैसे स्टार्टअप्स ने दिखाया कि कैसे एआई के जरिए सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों में टीबी के मरीजों का पता लगाने की दर में 35% की वृद्धि की गई है।
- **कृषि:** किसानों के लिए मिट्टी के एआई-सेंसर और वास्तविक समय में डेटा विश्लेषण ने दिखाया कि कैसे एआई खेती की लागत घटा सकता है।
- **भाषाई सेतु:** भारत की भाषाई विविधता, जो कभी बाधा मानी जाती थी, अब एआई के लिए एक डेटा खदान बन गई है। 22 भारतीय भाषाओं के बीच रीयल-टाइम अनुवाद के उपकरणों ने भाषाई सीमाओं को वस्तुतः समाप्त कर दिया है।

डेटा की शक्ति और रणनीतिक स्वायत्तता

भारत वर्तमान में दुनिया का 20% डेटा उत्पन्न करता है और उसके पास वैश्विक स्तर पर सबसे अधिक 'एआई स्किल पेनिट्रेशन' (एआई कौशल पैठ) है। 12 स्वदेशी 'लार्ज लैंग्वेज मॉडल्स' (एलएलएम) पर चल रहा काम यह सुनिश्चित करता है कि भारत भविष्य में केवल विदेशी तकनीकों का उपभोक्ता नहीं रहेगा।

23 वर्षीय जूनियर एआई इंजीनियर तसनीम खान, जो झारखंड से 1,200 किलोमीटर की यात्रा कर सम्मेलन में पहुंची थीं, ने इस नई पीढ़ी के जज्बे को स्वर दिया। उन्होंने कहा, 'यह सम्मेलन एक मेनिफेस्टो है जो साबित करता है कि अब भारत केवल कंज्यूमर नहीं है। हमारे पास दिमाग है, डेटा है और अब हमारे पास दुनिया की सबसे प्रभावशाली तकनीक बनाने की क्षमता भी है।'

एक नई सभ्यतागत चुनौती

भारत की एआई यात्रा केवल तकनीकी नहीं, बल्कि 'सभ्यतागत' है। प्रधानमंत्री ने जब 'मानव-केंद्रित एआई' की बात की, तो वे उस संतुलन की ओर इशारा कर रहे थे जहाँ तकनीक मानव गरिमा और लोकतंत्र के मूल्यों को मजबूत करे, न कि उन्हें नष्ट। ग्लोबल साउथ के पहले देश के रूप में एआई शिखर सम्मेलन की मेजबानी करना भारत को उस स्थान पर खड़ा करता है जहाँ वह तकनीकी विकास के लिए नए नैतिक मानदंड स्थापित कर सकता है।

एआई का भविष्य और भारत का दायित्व

2026 का 'इंडिया एआई इम्पैक्ट समिट' यह स्पष्ट संकेत दे गया है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का भविष्य अब केवल सिलिकॉन वैली के बंद कमरों में नहीं, बल्कि भारत जैसे विशाल लोकतंत्र की खुली जमीन और 1.4 अरब लोगों की आकांक्षाओं के बीच तय होगा। भारत ने यह संदेश देने का प्रयास किया कि तकनीक का अंतिम लक्ष्य केवल मुनाफा कमाना नहीं, बल्कि मानवता के समग्र उत्थान को सुनिश्चित करना है।

हालांकि इस आयोजन के दौरान गलगोटिया विश्वविद्यालय की एक प्रस्तुति ने विवाद को जन्म दे दिया और भारत के स्वदेशी नवाचार की विश्वसनीयता पर भी प्रश्नचिह्न खड़े कर दिए। एआई समिट में विश्वविद्यालय के स्टॉल पर प्रदर्शित रोबोटिक डॉग को स्वदेशी नवाचार के रूप में प्रस्तुत किया गया, जबकि तकनीकी विशेषज्ञों ने उसे चीन की कंपनी यूनिट्री रोबोटिक्स के व्यावसायिक मॉडल से मिलता-जुलता बताया। मामला सामने आने पर आयोजकों ने विश्वविद्यालय को स्टॉल हटाने का निर्देश दिया और बाद में विश्वविद्यालय को स्पष्टीकरण देते हुए खेद भी व्यक्त करना पड़ा। इस घटना ने समिट की प्रतिष्ठा पर एक अनचाहा धब्बा अवश्य लगा दिया।

फिर भी, जब भारत मंडपम की रोशनियाँ धीरे-धीरे मंद पड़ीं, तब वैश्विक समुदाय के लिए एक स्पष्ट संदेश उभरकर सामने आया—भारतीय एआई दृष्टि अब केवल कल्पना नहीं, बल्कि वर्तमान की एक ठोस वास्तविकता बन चुकी है। भारत न केवल एआई के तकनीकी ढांचे को मजबूत करने की दिशा में अग्रसर है, बल्कि वह इसके नैतिक आयामों को भी परिभाषित करने की कोशिश कर रहा है।

दरअसल, यह भारत की डिजिटल संप्रभुता का वह क्षण है, जब वह दुनिया को यह दिखा रहा है कि तकनीक को अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी और मानवीय कैसे बनाया जा सकता है। अंततः वही बात सार्थक प्रतीत होती है जिसे प्रधानमंत्री ने इस मंच से दोहराया—'एआई को वैश्विक विकास को गति देनी चाहिए, लेकिन इसका चरित्र मूलतः मानव-केंद्रित होना चाहिए।' यही वह दृष्टि है जो आने वाले समय में भारत को विश्व की अगली तकनीकी महाशक्ति के रूप में स्थापित कर सकती है।

मज़हब नहीं, मुल्क़

पैन इस्लामिक साम्राज्य का स्वप्नभंग

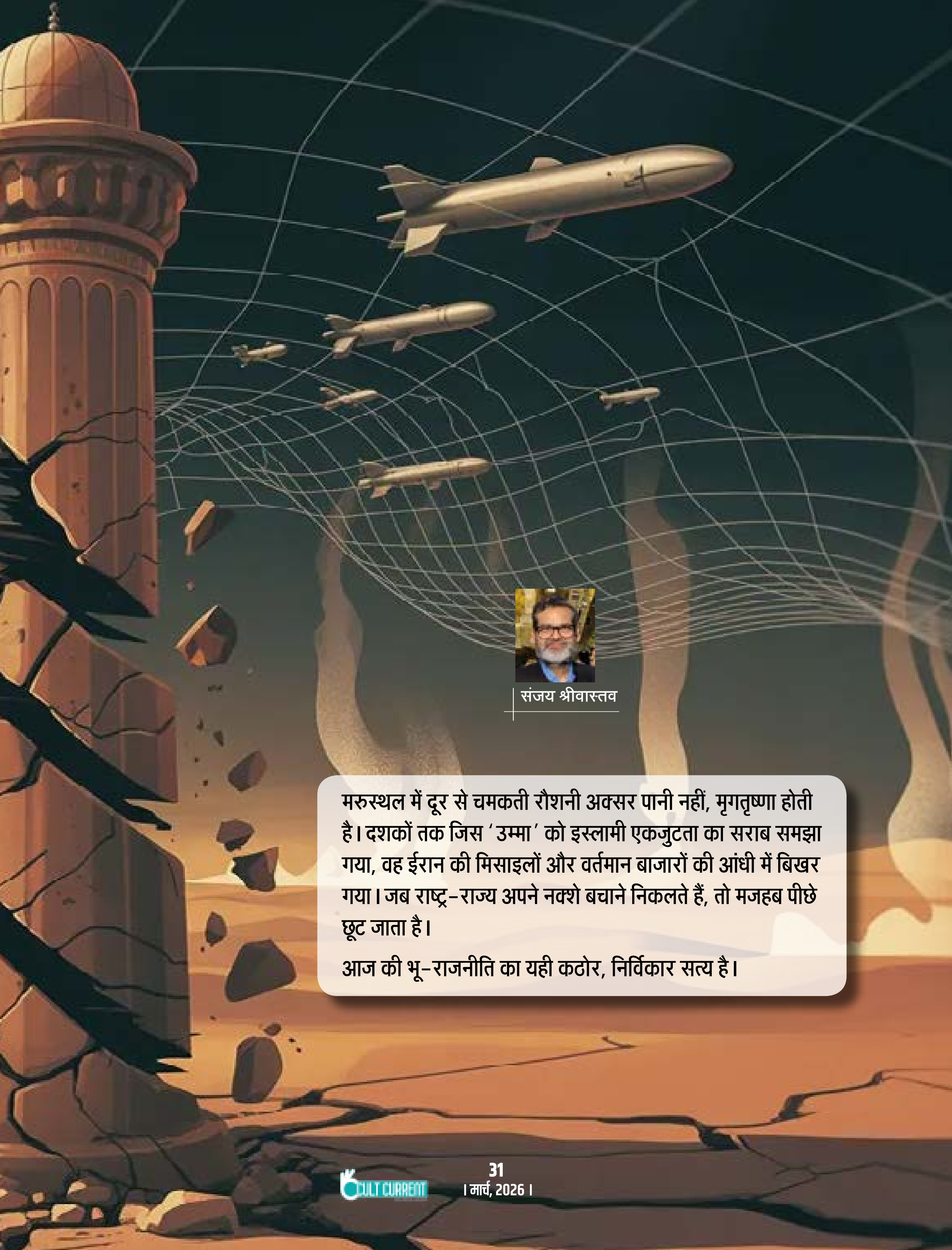

संजय श्रीवास्तव

मरुस्थल में दूर से चमकती रौशनी अक्सर पानी नहीं, मृगतृष्णा होती है। दशकों तक जिस 'उम्मा' को इस्लामी एकजुटता का सराब समझा गया, वह ईरान की मिसाइलों और वर्तमान बाजारों की आंधी में बिखर गया। जब राष्ट्र-राज्य अपने नक्शे बचाने निकलते हैं, तो मजहब पीछे छूट जाता है।

आज की भू-राजनीति का यही कठोर, निर्विकार सत्य है।

28 फरवरी 2026 के बाद की वह धुंधली शाम, जब तेहरान के क्षितिज पर अमेरिकी और इजराइली मिसाइलों के धमाकों ने एक भयावह रोशनी पैदा की, वह केवल एक युद्ध की शुरुआत नहीं थी। वह उस अधि-वृतांत के औपचारिक अवसान की गूंज थी, जिसे पिछली आधी सदी से 'मुस्लिम उम्मा' के रूप में पूजा गया। जब बंकर-बस्टर बमों ने तेहरान के पाश्चर स्ट्रीट स्थित सर्वोच्च नेता के परिसर को मलबे के ढेर में बदला, तो उस मलबे के नीचे केवल एक इमारत नहीं दबी थी; वहां वह इस्लामी पुनर्जागरण का सपना भी दफन हो गया, जिसने 1979 में अयातुल्ला खुमैनी की आंखों में एक वैश्विक पैन-इस्लामिक साम्राज्य की चमक पैदा की थी।

इतिहासकार भविष्य में इस दिन को वेस्टफेलियाई व्यवस्था की उस अंतिम जीत के रूप में देखेंगे, जिसने मजहब के ऊपर सीमाओं की संप्रभुता को पुनः स्थापित किया। 20वीं सदी के अंत में जब 'उम्मा' की बात होती थी, तो यह एक शक्तिशाली सॉफ्ट

प्रथम विश्व युद्ध के बाद खिलाफत के अंत ने मुस्लिम चेतना में एक गहरा जख्म छोड़ा था। 20वीं सदी के उत्तरार्ध में, उसी जख्म को भरने के लिए 'उम्मा' के विचार को राजनीतिक धार दी गई। 1969 में रबात में इस्लामी सहयोग संगठन का गठन इसी विचार को संस्थागत रूप देने का प्रयास था। उस समय 'उम्मा' को एक आर्थिक और राजनीतिक ब्लॉक के रूप में देखा जा रहा था, जो पश्चिम के प्रभुत्व को चुनौती दे सके।

पावर उपकरण था—एक वैचारिक लबादा, जिसे रियाद से जकार्ता तक के शासक अपनी जनता के असंतोष को दबाने और अपनी वैधता सिद्ध करने के लिए इस्तेमाल करते थे। लेकिन 2026 की मिसाइलों ने इस लबादे को तार-तार कर दिया है।

आज की विविशिका तेहरान के जलते हुए मोहल्ले नहीं हैं, बल्कि वह वैचारिक शून्य है जो रियाद, काहिरा और इस्लामाबाद के गलियारों में पसरा हुआ है। जिस 'उम्मा' के नाम पर दशकों तक रैलियां निकाली गईं, संयुक्त राष्ट्र में प्रस्ताव लाए गए और कविताएं लिखी गईं, वह आज इस अग्नि-परीक्षा में कहीं नजर नहीं आ रहा। यह स्पष्ट हो गया है कि मजहब अब भूगोल का विकल्प नहीं रहा। 'उम्मा' मर चुका है, और उसका हत्यारा कोई बाहरी दुश्मन नहीं, बल्कि राष्ट्र-राज्य की वह कठोर वास्तविकता है जिसे मुस्लिम जगत ने अपनी धार्मिक पहचान के नीचे दबाने की असफल कोशिश की थी।

'उम्मा' का मिथक और उसका ऐतिहासिक बोझ

मुस्लिम उम्मा का विचार मूलतः एक लोकोत्तर अवधारणा है। यह एक ऐसी वैश्विक एकता की कल्पना करता है जहां सीमाएं, भाषाएं और नस्लें गौण हो जाती हैं और केवल अकीदा ही प्राथमिक पहचान होती है। यह विचार उस समय की देन है जब साम्राज्य धार्मिक पहचान पर टिके थे। लेकिन, इस सिद्धांत का पतन 1924 में तुर्क साम्राज्य के पतन के साथ ही शुरू हो गया था। जब मुस्तफा कमाल अतातुर्क ने खिलाफत को समाप्त किया, तो उन्होंने केवल एक पद नहीं, बल्कि उस वैचारिक केंद्र को खत्म कर दिया था जिसने सदियों तक दुनिया भर के मुसलमानों को एक सूत्र में बांधने का दावा किया था।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद खिलाफत के अंत ने मुस्लिम चेतना में एक गहरा जख्म छोड़ा था। 20वीं सदी के उत्तरार्ध में, उसी जख्म को भरने के लिए 'उम्मा' के विचार को राजनीतिक धार दी गई। 1969 में रबात में इस्लामी सहयोग संगठन का गठन इसी विचार को संस्थागत रूप देने का प्रयास था। उस समय 'उम्मा' को एक आर्थिक और राजनीतिक ब्लॉक के रूप में देखा जा रहा था, जो पश्चिम के प्रभुत्व को चुनौती दे सके।

लेकिन असली बदलाव 1979 की ईरानी क्रांति के साथ आया।

अयातुल्ला खुमैनी ने दावा किया कि 'इस्लाम की कोई सीमा नहीं होती।' यह विचार सऊदी अरब के नेतृत्व वाले पारंपरिक सुन्नी-ढांचे को दी गई एक सीधी चुनौती थी। यहीं से 'उम्मा' के भीतर वह दरार पड़नी शुरू हुई, जो आज एक गहरी खाई में तब्दील हो चुकी है। ईरान ने क्रांति के निर्यात के माध्यम से जिस शिया क्रिसेंट का निर्माण किया, उसने सुन्नी अरब देशों के लिए 'उम्मा' की परिभाषा ही बदल दी। उनके लिए उम्मा अब एकता का प्रतीक नहीं, बल्कि ईरानी साम्राज्यवादी प्रभुत्व का एक औजार बन गया। 2026 के इस महायुद्ध में, जब ईरान के प्रॉक्सी संगठनों ने अरब देशों के हितों पर प्रहार किया, तो इस्लामी एकता का यह मुखौटा हमेशा के लिए उतर गया।

ऑपरेशन एपिक फ्यूरी और बिखरती पहचान

मार्च 2026 का वर्तमान संकट केवल ईरान के परमाणु कार्यक्रम के विरुद्ध एक सैन्य कार्रवाई नहीं है। यह उस प्रतिरोध की धुरी के विरुद्ध एक निर्णायक युद्ध है, जिसे ईरान ने पिछले चार दशकों में हिज्बुल्लाह, हूती और हमास जैसे संगठनों के माध्यम से सींचा था।

यहां विश्लेषण का सबसे महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि जब इजराइल—जिसे कभी उम्मा का शाश्वत शत्रु कहा जाता था—ईरान पर बमबारी कर रहा है, तो अरब जगत की प्रतिक्रिया क्या है? रणनीतिक मंचों के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात और बहरीन ने ईरान के पक्ष में एक भी शब्द नहीं कहा है। क्यों? क्योंकि ईरान ने जवाबी कार्रवाई में इन्हीं देशों के अमेरिकी बेसों और रणनीतिक ठिकानों पर मिसाइलें दागीं। इसकी वजह से, इन देशों ने ईरान की जवाबी कार्रवाई को क्षेत्रीय अस्थिरता फैलाने वाला कृत्य करार दिया है।

यह बदलाव अचानक नहीं आया। 2020 के अब्राहम अकॉर्ड ने इसकी नींव रखी थी। अरब देशों ने यह समझ लिया कि इजराइल उनके लिए एक रणनीतिक साझेदार हो सकता है, जबकि ईरान उनके राजशाही ढांचे के लिए एक अस्तित्वगत खतरा है।

उम्मा के पारंपरिक विमर्श में इजराइल एक कैंसर था, लेकिन वर्तमान भू-राजनीति में इजराइल एक सुरक्षा कवच बन चुका है। जब ईरान की मिसाइलें दुबई के वैभवशाली फेयरमोंट होटल या कुवैत के हवाई अड्डों पर गिर रही हैं, तो वह संदेश इजराइल के लिए नहीं, बल्कि उन मुस्लिम देशों के लिए है जिन्होंने अपने राष्ट्रीय हितों को मजहबी एकजुटता के ऊपर रखा। यह भाई का भाई पर हमला नहीं है, यह एक राष्ट्र का अपने पड़ोसी पर हमला है। यहाँ धार्मिक बंधुत्व का सिद्धांत राष्ट्रीय संप्रभुता के सामने पूरी तरह हार मान चुका है।

दक्षिण एशिया का फ्रंट — इस्लामी दुर्ग में गृहयुद्ध

उम्मा के दरकने की सबसे वीभत्स और विद्रूप तस्वीर पश्चिम एशिया के रेगिस्तानों में नहीं, बल्कि दक्षिण एशिया के उस भू-भाग में दिखाई दे रही है जिसे कभी इस्लाम का अजेय किला कहा जाता था। पाकिस्तान और अफगानिस्तान—दो ऐसे राष्ट्र जिनकी नींव में मजहबी पहचान ही एकमात्र सीमेंट थी—आज एक-दूसरे के रक्त के प्यासे हैं।

पाकिस्तान, जिसका निर्माण ही द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के आधार पर हुआ था, आज उसी भस्मासुर से लड़ रहा है जिसे उसने इस्लामी भाईचारे के नाम पर दशकों तक पाला-पोसकर बड़ा किया था। तालिबान का अफगानिस्तान में दोबारा उदय पाकिस्तान के लिए एक रणनीतिक गहराई होना था, लेकिन आज यह एक रणनीतिक दुःस्वप्न बन चुका है।

यहाँ विरोधाभास की पराकाष्ठा देखिए—अफगानिस्तान में एक

शुद्ध इस्लामी अमीरात है और पाकिस्तान एक इस्लामी गणराज्य है। दोनों का दावा है कि उनका शासन शरीयत के मूल्यों पर आधारित है। फिर भी, डूरंड रेखा पर तोपों की गूंज यह सिद्ध कर रही है कि जब पश्तो राष्ट्रवाद और सीमा सुरक्षा की बात आती है, तो उम्मा का सिद्धांत एक रद्दी कागज के टुकड़े से ज्यादा कुछ नहीं रह जाता। तालिबान के लिए काबुल की संप्रभुता और पश्तून पहचान, इस्लामाबाद की मुस्लिम एकजुटता की अपीलों से कहीं बड़ी है।

दक्षिण एशिया में उम्मा का पतन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ धर्म का इस्तेमाल एक रणनीतिक हथियार के रूप में किया गया था। जब पाकिस्तान के भीतर टीटीपी जैसे संगठन उसी राज्य के खिलाफ युद्ध छेड़ते हैं जिसने इस्लाम को अपना संविधान बनाया है, तो यह राजनीतिक इस्लाम की आंतरिक विफलता का प्रमाण है। अब इस मोड़ पर, पाकिस्तान का मध्यम वर्ग उम्मा के नारों से थक चुका है। वे देख रहे हैं कि उम्मा के नाम पर उन्हें केवल आर्थिक बदहाली और वैश्विक अलगाव मिला है, जबकि उनके अरब भाई इजराइल के साथ मिलकर अपनी अर्थव्यवस्थाएं चमका रहे हैं।

आर्थिक यथार्थवाद — विजन 2030 बनाम शहादत की संस्कृति

हमारे इस विश्लेषण का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ आर्थिक यथार्थवाद है। 20वीं सदी में तेल एक इस्लामी हथियार था। लेकिन 2026 में तेल अब मजहबी हथियार नहीं, बल्कि एक राष्ट्रीय संसाधन है जिसे बचाना अरब देशों की पहली प्राथमिकता है।

सऊदी अरब के क्राउन प्रिंस मोहम्मद बिन सलमान का विजन 2030 केवल एक आर्थिक योजना नहीं है, बल्कि यह उम्मा के पुराने ढांचे से सऊदी अरब का निकासी द्वार है। आज का सऊदी अरब शहादत की संस्कृति के बजाय स्टार्टअप संस्कृति को बढ़ावा दे रहा है। नियोम जैसी मेगा-सिटीज और रेड सी टूरिज्म प्रोजेक्ट्स यह बताते हैं कि रियाद अब मक्का-मदीना के धार्मिक अभिभावक वाली छवि से निकलकर एक वैश्विक निवेश हब बनना चाहता है।

जब ईरान इस युद्ध में होर्मुज जलडमरूमध्य को बंद कर देता है, तो वह सबसे बड़ा हमला अमेरिका पर नहीं, बल्कि सऊदी अरब, यूएई और कतर के पेट पर करता है। 20वीं सदी के उम्मा विमर्श में गरीबी और सादगी को मजहबी गौरव माना जाता था। लेकिन आज की खाड़ी की नई पीढ़ी को खिलाफत में कोई दिलचस्पी नहीं है; उन्हें ग्लोबल एक्सेस, हाई-स्पीड इंटरनेट

और ब्लॉकचेन इकोनॉमी चाहिए। अकीदे और अर्थव्यवस्था के इस द्वंद्व में अर्थव्यवस्था की जीत ही उम्मा की हार है।

जैसे-जैसे दुनिया ग्रीन एनर्जी और इलेक्ट्रिक वाहनों की ओर बढ़ रही है, तेल उत्पादक मुस्लिम देशों को समझ आ गया है कि उनके पास धार्मिक प्रयोगों के लिए समय बहुत कम बचा है। वर्तमान युद्ध उनके लिए एक अलार्म है। यदि वे ईरान के साथ इस्लामी एकजुटता के नाम पर खड़े होते हैं, तो वे अपने आर्थिक भविष्य को दांव पर लगा देंगे। यही कारण है कि उम्मा की सामूहिक शक्ति का विचार अब केवल इतिहास की किताबों के लिए बचा है। अब हर देश अपना अस्तित्व रक्षा ढूंढ रहा है।

विलायत-ए-फकीह की अंतिम सांसें

28 फरवरी 2026 को अयातुल्ला खामेनेई की हत्या ने ईरान के भीतर उस पवित्र तंत्र की धुरी को ही तोड़ दिया है। ईरान

का विलायत-ए-फकीह का सिद्धांत इस दावे पर टिका था कि एक धार्मिक न्यायविद ईश्वर की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन जब अत्याधुनिक तकनीक और इंटेलिजेंस इस पवित्र घेरे को भेद देते हैं, तो उस नेतृत्व की दिव्यता का मिथक भी टूट जाता है।

ईरान के भीतर रिवोल्यूशनरी गार्ड्स का बढ़ता प्रभाव यह दर्शाता है कि अब सत्ता का आधार कुरानिक आदेश नहीं, बल्कि बंदूक की नली है। जब किसी विचारधारा का नेतृत्व नैतिक होने के बजाय सैन्यीकृत हो जाता है, तो वह पूरे विश्व के मुसलमानों का नेतृत्व करने की अपनी शक्ति खो देता है। तेहरान की सड़कों पर गूंज रहे नारे—'ना गज्जा, ना लुबनान, जांम फिदा-ए-ईरान'—इस बात का उद्घोष हैं कि अब आम मुसलमान परजीवी विचारधाराओं के लिए अपने बच्चों का भविष्य कुर्बान करने को तैयार नहीं है।

तुर्की का नियो-ओटोमन स्वप्न

इस युद्ध में उम्मा के ताबूत में एक और कील तुर्की के सुल्तान बनने की महत्वाकांक्षा का ढहना है। राष्ट्रपति रेसेप तैयप एर्दोगन ने पिछले एक दशक में तुर्की को सऊदी अरब के विकल्प के रूप में मुस्लिम जगत का नया मसीहा बनाने की कोशिश की थी।

लेकिन कड़वी हकीकत यह है कि तुर्की की अर्थव्यवस्था उसकी धार्मिक बयानबाजी का साथ नहीं दे पाई। जब ईरान पर हमले शुरू हुए, तो तुर्की—जो नाटो का सदस्य भी है—एक अजीबोगरीब कशमकश में फंस गया। तुर्की ने इस युद्ध में तटस्थ रहने की कोशिश की, लेकिन इस तटस्थता ने ही उसके उम्मा नेतृत्व के दावे की पोल खोल दी। जब संकट आया, तो अंकारा ने मजहबी भाइयों के लिए अपनी सेना भेजने के बजाय अपनी सीमाएं सील

कर दीं ताकि शरणार्थियों का सैलाब न आए। यह राष्ट्रवाद की वह जीत है जिसने पैन-इस्लामवाद के गुब्बारे की हवा निकाल दी।

कतर, जो खुद को दुनिया का सबसे बड़ा मध्यस्थ कहता था, इस युद्ध में सबसे ज्यादा असुरक्षित महसूस कर रहा है। एक तरफ कतर में अमेरिका का विशाल अल-उदैद एयरबेस है, और दूसरी तरफ वह हमास और तालिबान जैसे संगठनों का राजनीतिक घर है। जब अमेरिकी विमानों ने उसी के बेस से उड़ान भरकर ईरान के ठिकानों को तबाह किया, तो कतर की दोहरी नीति का अंत हो गया। उम्मा की राजनीति में कतर का सॉफ्ट पावर अब एक बोझ बन चुका है।

चीन का लेन-देन वाला दृष्टिकोण और रूस की विवशता

मुस्लिम दुनिया के कई बुद्धिजीवियों को उम्मीद थी कि 21वीं सदी में चीन और रूस का यूरेशियन ब्लॉक उन्हें पश्चिम के खिलाफ एक सुरक्षा कवच प्रदान करेगा। लेकिन यह रणनीतिक भ्रम भी टूट गया।

चीन के लिए ईरान केवल सस्ता तेल और बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव का एक ट्रांजिट पॉइंट है। 2023 में चीन ने सऊदी और ईरान के बीच हाथ मिलवाकर वाहवाही तो लूटी थी, लेकिन जैसे ही मिसाइलें चलने लगीं, बीजिंग ने खुद को संयम की

अपील तक सीमित कर लिया। चीन ने साबित कर दिया कि वह मुनाफे का साझेदार है, विचारधारा का सिपाही नहीं। चीन कभी भी आपकी धार्मिक अस्मिता के लिए अपने वैश्विक व्यापार को दांव पर नहीं लगाएगा।

यूक्रेन युद्ध और प्रतिबंधों से जूझता रूस, ईरान को केवल हथियारों की सीमित आपूर्ति तक ही रोक पाया। मास्को के पास वह सैन्य या आर्थिक क्षमता नहीं बची कि वह तेहरान को बचाने के लिए सीधे युद्ध में कूदे। ईरान का अकेलापन यह दर्शाता है कि उम्मा के नाम पर बनाई गई गठबंधन की इमारतें रेत की बुनियाद पर टिकी थीं।

भारत की सक्रिय तटस्थता और चाबहार का भविष्य

भारत के लिए यह युद्ध एक गंभीर राजनयिक परीक्षा है। भारत ने इस बार गुटनिरपेक्षता की पुरानी परिभाषा को बदलकर बहु-संरेखण को अपनाया है। वैश्विक थिंक-टैंकों के विश्लेषण बताते हैं कि भारत ने ईरान के साथ अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रिश्तों का सम्मान तो किया, लेकिन अपनी सुरक्षा और आर्थिक हितों के लिए इजराइल और अरब देशों के साथ खड़ा होना बेहतर समझा।

चाबहार पोर्ट, जिसे भारत ने पाकिस्तान को बाईपास करने के लिए बनाया था, आज एक युद्ध क्षेत्र में बदल चुका है। लेकिन भारत ने इसे एक व्यापारिक क्षति के रूप में देखा, न कि किसी धार्मिक ब्लॉक के प्रति सहानुभूति के रूप में। भारत का यह रुख पूरी दुनिया को संदेश दे रहा है कि उम्मा का राजनीतिक वजन अब शून्य हो चुका है।

इस्लामी सहयोग संगठन का अप्रासंगिक होना

57 देशों का यह संगठन आज दुनिया का सबसे बड़ा अकेलापन महसूस करने वाला क्लब है। इस्लामी सहयोग संगठन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य फिलिस्तीन की रक्षा और मुस्लिम देशों के हितों का संरक्षण था। लेकिन इस विपत्ति काल में जब ईरान ने इस संगठन की आपात बैठक बुलाई, तो अधिकांश सदस्य

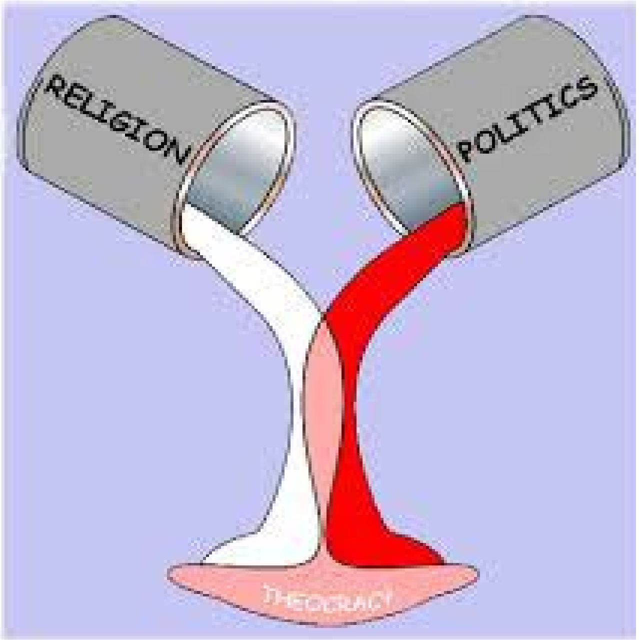

देशों ने इसे नजरअंदाज कर दिया।

यह संगठन केवल उन मुद्दों पर सक्रिय होता है जहां कोई खर्च न करना पड़े—जैसे इस्लामफोबिया पर निंदा प्रस्ताव पारित करना। लेकिन जब सदस्य देश एक-दूसरे पर मिसाइल दाग रहे हों, तो संगठन पूरी तरह पंगु नजर आता है। यह युद्ध इस संगठन के औपचारिक विसर्जन का समय है। यह अब केवल एक डिनर क्लब बनकर रह गया है, जिसका वैश्विक राजनीति में कोई प्रभाव नहीं है।

क्या धर्म राजनीति का आधार हो सकता है?

हमारा यह विश्लेषण एक मौलिक और अस्तित्वगत प्रश्न उठाता है—क्या 21वीं सदी के उत्तर-आधुनिक युग में धर्म किसी भी स्थायी राजनीतिक एकता का आधार बन सकता है? मुस्लिम उम्मा का विचार मध्यकालीन युग में तब सफल था, जब साम्राज्य धार्मिक पहचान पर टिके थे।

लेकिन आधुनिक युग वेस्टफेलियाई राष्ट्र-राज्य का युग है। राष्ट्रवाद एक ऐसी मौलिक शक्ति है जो धर्म की सीमाओं को लांघ जाती है। एक सऊदी नागरिक अब खुद को पहले सऊदी और बाद में मुसलमान मानता है। यह युद्ध यह प्रमाणित करता है कि जब अकीदे और राष्ट्रीय हित के बीच चुनाव करना होता है, तो आधुनिक नागरिक अपने पासपोर्ट को अपनी धार्मिक पहचान से ऊपर रखता है। धर्म को वैश्विक कूटनीति का आधार बनाना एक आत्मघाती कदम साबित हुआ है।

भविष्य का मानचित्र — उम्मा के बाद की दुनिया

अब जो नई व्यवस्था उभरेगी, वह धार्मिक ब्लॉकों के बजाय आर्थिक गलियारों पर आधारित होगी। पुराने इस्लामी मानचित्र की जगह अब तीन नए शक्ति केंद्र लेंगेः

1. **इजराइल-अरब सुरक्षा धुरीः** यह गठबंधन अब पश्चिम एशिया की सबसे बड़ी हकीकत होगा। यह धर्म पर नहीं, बल्कि उन्नत तकनीक, जल प्रबंधन और साझा सुरक्षा चिंताओं पर आधारित होगा। दुश्मन का दुश्मन दोस्त है का सिद्धांत यहाँ उम्मा के सिद्धांत को प्रतिस्थापित कर देगा।
2. **ईरान का पृथक्करणः** ईरान या तो एक अलग-थलग गैरीसन स्टेट बनकर रह जाएगा या फिर उसे अपनी 1979 की क्रांतिकारी पहचान को त्यागकर एक सामान्य राष्ट्र-राज्य बनना होगा।
3. **दक्षिण एशिया का यथार्थवादी पुनर्गठनः** पाकिस्तान के लिए उम्मा का कार्ड अब वैश्विक मंच पर कोई कीमत नहीं रखता। उसे अपनी पहचान जिहाद के निर्यातक से बदलकर एक आर्थिक इकाई के रूप में बनानी होगी।

डिजिटल उम्मा — एक आभासी सांत्वना

जैसे-जैसे भौगोलिक उम्मा मर रहा है, एक डिजिटल उम्मा का उदय हो रहा है। सोशल मीडिया और हैशटैग कैंपेन के माध्यम से मुसलमान एक-दूसरे से जुड़ रहे हैं। लेकिन यह डिजिटल एकजुटता केवल एक भावनात्मक सांत्वना है। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर लाखों लाइक किसी देश की सीमा नहीं बचा सकते। इस युद्ध में देखा गया कि जब तेहरान पर बम गिर रहे थे, तो इंटरनेट पर ट्रेंड तो चल रहे थे, लेकिन जमीन पर कोई एक भी मुस्लिम राष्ट्र ईरान की मदद के लिए आगे नहीं आया।

विमर्श का नया धरातल

आज के दौर में शक्ति का मापदंड प्रार्थनाओं की संख्या नहीं, बल्कि सिलिकॉन चिप्स की क्षमता और हाइपरसोनिक मिसाइलों की गति है। मुस्लिम देशों के भीतर एक बड़ा वर्ग अब इस यथार्थ को स्वीकार कर चुका है। उम्मा का विमर्श उन शासकों के लिए लाभदायक था जो अपनी विफलताओं को मजहबी गौरव के पीछे छिपाना चाहते थे। लेकिन जब मिसाइलें छत फाड़कर अंदर आती हैं, तो वह गौरव धूल में मिल जाता है।

रियाद से जकार्ता तक के युवा अब अपनी पहचान को वैश्विक नागरिक के रूप में देख रहे हैं। वे कुरान के साथ-साथ कोडिंग

और कूटनीति को भी महत्व दे रहे हैं। यह उम्मा का अंत नहीं, बल्कि एक कृत्रिम राजनीतिक पहचान का अंत है। लोग अब यह समझ गए हैं कि एक बेहतर भविष्य के लिए उन्हें एक-दूसरे के अकीदे की नहीं, बल्कि एक-दूसरे के बाजारों और तकनीक की जरूरत है।

भारत के लिए रणनीतिक अवसर

भारत जैसे देश के लिए यह एक महत्वपूर्ण समय है। भारत के पास दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी मुस्लिम आबादी है, लेकिन भारत ने कभी भी उम्मा के विमर्श को अपनी विदेश नीति पर हावी नहीं होने दिया। आज जब मुस्लिम देश खुद उम्मा से दूर भाग रहे हैं, तो भारत के पास उनके साथ शुद्ध आर्थिक और सामरिक आधार पर जुड़ने का सुनहरा मौका है। इंडिया-मिडल ईस्ट-यूरोप कॉरिडोर जैसे प्रोजेक्ट्स इसी नई विश्व व्यवस्था की नींव हैं।

उम्मा का दार्शनिक अवसान

दर्शन की दृष्टि से देखें तो उम्मा का विचार एक सामूहिकतावाद था जिसने व्यक्तिवाद और राष्ट्रवाद को नकारने की कोशिश की। लेकिन मानव स्वभाव मूलतः अपनी जमीन और अपनी जड़ों से जुड़ा होता है। एक अफगान के लिए उसकी पश्तूनवली उसके मजहब से ज्यादा पुरानी और गहरी है। एक ईरानी के लिए उसका फारसी गौरव उसके अरबी मूल के मजहब से हमेशा टकराता रहा है। 2026 के युद्ध ने केवल इन टकरावों को सतह पर ला दिया है।

इतिहास की विदाई और यथार्थ का स्वागत

मुस्लिम उम्मा एक भव्य कविता थी जिसे राजनीति के गद्य में लिखने की कोशिश की गई। परिणाम एक ऐसी त्रासदी के रूप में सामने आया है, जिसे आज की मिसाइलें लिख रही हैं। आज जब हम तेहरान के धुएं और दुबई की गगनचुंबी इमारतों की खामोशी को देखते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मुस्लिम दुनिया ने अपने स्वप्निल अतीत को कठोर भविष्य के लिए छोड़ दिया है।

उम्मा की अवधारणा अब इतिहास के संग्रहालय में उस पुरानी तलवार की तरह रखी होगी, जो कभी गौरव का प्रतीक तो थी, लेकिन आज के साइबर वॉरफेयर और आर्थिक गलियारों के युग में पूरी तरह बेअसर है। हम एक ऐतिहासिक बदलाव के गवाह बन रहे हैं। हम एक ऐसे युग में प्रवेश कर रहे हैं जहां पहचानें अब आसमान (मजहब) से तय नहीं होंगी, बल्कि जमीन (राष्ट्र) से तय होंगी। मजहब नहीं, मुल्क बड़ा—यही आज का वैश्विक महामंत्र है।

मार्च 2026 की यह युद्ध-ज्वाला जब शांत होगी, तो राख के नीचे से जो नई दुनिया निकलेगी, वह किसी मजहबी किताब की आयतों से नहीं, बल्कि कूटनीति के समझौतों और विज्ञान की खोजों से संचालित होगी। उम्मा का अंत असल में मुस्लिम समाज के राजनीतिक वयस्क होने की शुरुआत है, जहां भावनाएं अब राष्ट्रीय हितों का स्थान नहीं ले सकेंगी।

अलविदा उम्मा, स्वागत है यथार्थवाद।

फरवरी की वह गुनगुनी दोपहर जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का विशेष विमान इजराइली धरती पर उतरा, तो वह केवल एक कूटनीतिक यात्रा की शुरुआत नहीं थी। वह उस पुराने विश्वक्रम की आधिकारिक विदाई थी जिसमें आदर्शवाद और मजहबी एकजुटता को भूगोल से ऊपर रखा जाता था। हवाई अड्डे पर स्वागत की दृश्यता और प्रतीकों का चयन इतना सटीक था कि संदेश को समझने के लिए किसी अनुवादक की आवश्यकता नहीं थी। प्रधानमंत्री मोदी के स्वागत के लिए स्वयं बेंजामिन नेतन्याहू और उनकी पत्नी सारा उपस्थित थे। सारा नेतन्याहू का केसरिया पहनावा और प्रधानमंत्री मोदी का केसरिया पॉकेट स्क्वायर-यह एक संयोग मात्र नहीं, बल्कि दो ऐसी सभ्यताओं का सचेत मिलन था जो स्वयं को अपनी प्राचीन जड़ों के रक्षक के रूप में देख रही हैं।

नेतन्याहू द्वारा प्रधानमंत्री मोदी को केवल मित्र नहीं, बल्कि 'भाई' कहना और नेसेट (इजराइली संसद) में उन्हें अभूतपूर्व सम्मान देना यह दर्शाता है कि भारत और इजराइल का यह रिश्ता अब पारंपरिक

राकेश नर्वाल

यरूशलेम की धरती पर उतरा नरेंद्र मोदी का विमान केवल एक कूटनीतिक यात्रा का संकेत नहीं था; वह भारतीय विदेश नीति के एक युगांत का प्रतीक था। फिलिस्तीन की नैतिक विरासत से इजराइल की सामरिक साझेदारी तक, यह क्षण उस दुनिया की घोषणा था जहाँ भावनाओं की जगह अब राष्ट्रहित का शीतल गणित राज करता है।

यरूशलेम में केसरिया समीकरण

कूटनीति की सीमाओं को लांघकर एक गहरे सामरिक और वैचारिक संरेखण में बदल चुका है। लेकिन इस भव्य स्वागत की चकाचौंध के पीछे एक जटिल और सुलगता हुआ यथार्थ भी था। यह यात्रा उस समय हो रही थी जब गाजा में भीषण तबाही और अंतरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा नेतन्याहू के विरुद्ध वारंट जारी होने के बाद वैश्विक दक्षिण और पश्चिमी जगत के एक बड़े हिस्से में इजराइल के प्रति आक्रोश चरम पर था।

केसरिया प्रतीकवाद और सभ्यतागत संवाद

प्रधानमंत्री मोदी की इस दूसरी इजराइल यात्रा ने 2017 की उनकी पहली यात्रा के प्रभाव को और अधिक सघन कर दिया है। यह एक ऐसा राजनीतिक और सामरिक आलिंगन है जो हर बीतते वर्ष के साथ अधिक निर्भीक होता गया है। दोनों नेताओं के बीच की व्यक्तिगत केमिस्ट्री और साझा मंचों से दिए गए संदेश एक ऐसी कहानी बयां करते हैं जहाँ दो नेता अपनी विचारधारा, सुरक्षा चिंताओं और राजनीतिक इस्लाम के प्रति एक साझा अविश्वास से बंधे हुए हैं।

हिंदू दक्षिणपंथ और इजराइल के उग्र राष्ट्रवाद के बीच एक प्राकृतिक आकर्षण है। दोनों ही देश स्वयं को आधुनिक खतरों के विरुद्ध अपनी प्राचीन विरासत के प्रहरी के रूप में देखते हैं। यह प्रतीकवाद प्रधानमंत्री मोदी के घरेलू मतदाताओं के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो इजराइल को एक ऐसी 'मजबूत राष्ट्र' की छवि के रूप में देखते हैं जो बिना किसी संकोच के अपने शत्रुओं का दमन करता है। इस यात्रा ने भारत के भीतर इस विमर्श को और बल दिया है कि एक 'विश्वगुरु' को अब 'वैश्विक यथार्थवाद' के आधार पर अपनी राह चुननी होगी।

नैतिक मूल्यों से सामरिक हितों का सफर

भारतीय विदेश नीति के इतिहास में यह यात्रा एक निर्णायक मोड़ है। आजादी के बाद से दशकों तक भारत फिलिस्तीनी अधिकारों का सबसे

मुखर समर्थक रहा। इसे उस समय के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के विस्तार के रूप में देखा जाता था। 1974 में भारत फिलिस्तीन मुक्ति संगठन (पीएलओ) को मान्यता देने वाला पहला गैर-अरब राष्ट्र था। यासिर अराफात भारत के प्रिय अतिथि थे और भारतीय विश्वविद्यालयों में फिलिस्तीनी छात्रों की एक बड़ी संख्या शिक्षा ग्रहण करती थी। वह दौर 'तरबूज' (फिलिस्तीनी झंडे के रंगों का प्रतीक) के प्रति सहानुभूति और इजराइल के प्रति एक नैतिक दूरी का दौर था।

1992 में कांग्रेस सरकार ने इजराइल के साथ पूर्ण राजनयिक संबंध स्थापित किए, लेकिन उस समय भी फिलिस्तीन के प्रति एक सुरक्षात्मक रवैया बना रहा। 2014 के बाद प्रधानमंत्री मोदी ने इस हिचकिचाहट को पूरी तरह समाप्त कर दिया। आज भारत 'दो-राष्ट्र समाधान' की बात तो करता है, लेकिन उसके क्रियान्वयन में उसकी रुचि न्यूनतम हो गई है। फिलिस्तीनियों के लिए भारत का यह व्यवहार एक गहरे विश्वासघात जैसा है। वे महसूस कर रहे हैं कि जिस भारत को वे अपना नैतिक कवच मानते थे, उसने अब सामरिक लाभ के लिए उनकी उपेक्षा कर दी है।

फिलिस्तीनी विलाप

इस्तांबुल स्थित फिलिस्तीनी विद्वान मुहम्मद मकरम बलवी का यह कहना कि 'भारत की विरासत अन्याय के सामने तटस्थ रहने की नहीं, बल्कि सैद्धांतिक नेतृत्व की रही है,' आज के दौर में एक विलाप की तरह सुनाई देता है। 75,000 से अधिक फिलिस्तीनियों की मृत्यु, मलबे में तब्दील हो चुके शहर और अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की 'नरसंहार' संबंधी रिपोर्टों के बीच प्रधानमंत्री मोदी की यरूशलेम यात्रा को एक 'मूक समर्थन' के रूप में देखा जा रहा है।

विपक्ष, विशेषकर कांग्रेस नेता प्रियंका गांधी वाड्रा ने इस यात्रा के समय पर सवाल उठाते हुए इसे अमानवीय करार दिया। उनका यह कहना कि 'भारत हमेशा सत्य और न्याय के साथ खड़ा रहा है,' उस पुरानी नेहरूवादी कूटनीति की याद दिलाता है जो अब केवल इतिहास की पुस्तकों तक सीमित रह गई है। यथार्थ यह है कि आधुनिक भारत अब केवल 'पीड़ितों' की आवाज बनने के बजाय 'विजेताओं' के साथ खड़ा होना अधिक लाभदायक समझता है।

अंतरराष्ट्रीय न्यायालय और 'विश्वगुरु' की दुविधा

यह यात्रा एक ऐसे समय में हुई जब बेंजामिन नेतन्याहू पर युद्ध अपराधों के आरोप हैं और वे घरेलू राजनीति में भ्रष्टाचार के मामलों से जूझ रहे हैं। सेवामुक्त राजनयिक के.पी. फाबियान के अनुसार, यह यात्रा प्रधानमंत्री मोदी द्वारा नेतन्याहू को दिया गया एक 'व्यक्तिगत उपहार' था। नेतन्याहू के लिए यह एक बड़ी कूटनीतिक विजय है क्योंकि इसने उन्हें वैश्विक अलगाव के नैरेटिव से बाहर निकाला है। 1.4 अरब की आबादी वाले देश के नेता का उनके साथ खड़े होना यह संदेश देता है कि दुनिया अभी भी उनके साथ है।

लेकिन भारत के लिए यह एक नैतिक दुविधा भी है। क्या एक 'विश्वगुरु' को ऐसे नेतृत्व के साथ इतनी निकटता दिखानी चाहिए जिस पर नरसंहार के आरोप हों? या फिर राष्ट्रीय सुरक्षा और तकनीक की जरूरतें इन नैतिक सवालों से ऊपर हैं? मार्च 2026 की इस यात्रा ने स्पष्ट कर दिया है कि भारत ने अब 'यथार्थवाद' को ही अपनी नई नैतिकता बना लिया है।

'फोर्स मल्टीप्लायर' और सुरक्षा का नया व्याकरण

इजराइल और भारत के रिश्तों का आधार अब केवल भावनाएं नहीं, बल्कि कठोर सामरिक हित हैं। इजराइल भारत को वह आधुनिक रक्षा प्रणाली, साइबर क्षमताएं और कृषि तकनीक उपलब्ध कराता है जो कोई अन्य देश इतनी सहजता से नहीं देता। 17 समझौतों और 10 नई घोषणाओं के साथ इस रिश्ते को अब 'विशेष सामरिक साझेदारी' का दर्जा दिया गया है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई), क्वांटम कंप्यूटिंग और महत्वपूर्ण खनिजों के क्षेत्र में सहयोग भारत की भविष्य की जरूरतों के लिए अपरिहार्य है।

भारत के लिए इजराइल एक 'फोर्स मल्टीप्लायर' है। सीमाओं पर बढ़ते तनाव और आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियों के बीच इजराइली तकनीक भारत के लिए सुरक्षा का नया व्याकरण लिख रही है। यही कारण है कि गाजा की तबाही के दृश्यों के बावजूद नई दिल्ली की कूटनीति में इजराइल के लिए पलक-पांवड़े बिछे रहे।

आई2यू2 और पश्चिम एशिया का नया भूगोल

पश्चिम एशिया का राजनीतिक भूगोल अब बदल चुका है। 'मुस्लिम उम्मा' का विचार अब केवल एक ऐतिहासिक अवशेष रह गया है। सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) की अपनी प्रतिस्पर्धा और ईरान के बढ़ते परमाणु प्रभाव ने नए गठबंधनों को जन्म दिया है। भारत, इजराइल, अमेरिका और यूएई का 'आई2यू2' समूह इसी नई विश्व व्यवस्था का प्रतीक है।

ईरान अब वह केंद्र नहीं रहा जो पूरे मुस्लिम जगत को एकजुट कर सके। इसके विपरीत, सुन्नी अरब देश अब ईरान के खतरे से बचने के लिए इजराइल के साथ हाथ मिला रहे हैं। पूर्व राजदूत तल्मीज अहमद का यह कहना कि 'प्रधानमंत्री ने इस त्रिपक्षीय साझेदारी (भारत-इजराइल-यूएई) को भारत के अन्य क्षेत्रीय जुड़ावों पर प्राथमिकता दी है,' उम्मा के अंत की पुष्टि करता है। भारत अब उस ब्लॉक का हिस्सा है जहाँ आर्थिक गलियारे और सामरिक सुरक्षा ही एकमात्र धर्म हैं।

आंतरिक राजनीति और विरोध के स्वर

भारत के भीतर इस यात्रा को लेकर जो विभाजन दिखा, वह केवल कूटनीतिक नहीं बल्कि वैचारिक है। जहाँ एक तरफ सरकार इसे 'शक्ति के प्रदर्शन' के रूप में देख रही है, वहीं विपक्ष इसे भारत की पारंपरिक छवि के पतन के रूप में पेश कर रहा है। राहुल गांधी द्वारा संसद में इस मुद्दे पर सरकार को घेरना और एपस्टीन फाइलों में प्रधानमंत्री के संदर्भों पर स्पष्टीकरण मांगना यह दर्शाता है कि अंतरराष्ट्रीय घटनाएं अब घरेलू राजनीति का केंद्र बन चुकी हैं।

केंद्रीय मंत्री हरदीप सिंह पुरी को प्रेस कॉन्फ्रेंस करके इन आरोपों को खारिज करना पड़ा, जिससे स्पष्ट हुआ कि सरकार इन विवादों को लेकर संवेदनशील है। लेकिन अंततः, सरकार को यह विश्वास है कि आम जनता 'फिलिस्तीन के दर्द' से ज्यादा 'इजराइली तकनीक' और 'मजबूत राष्ट्रवाद' को महत्व देती है।

भावनाओं का सूर्यास्त और यथार्थ का स्वागत

प्रधानमंत्री मोदी की 2026 की इजराइल यात्रा 'मुस्लिम उम्मा' की अप्रासंगिकता और राष्ट्र-राज्य के यथार्थवाद की सबसे बड़ी मिसाल है। यह यात्रा यह प्रमाणित करती है कि भविष्य की दुनिया में पहचानें अब आसमान (मजहब) से नहीं, बल्कि जमीन (राष्ट्रीय हित) से तय होंगी।

यरूशलेम की गलियों में जब मोदी और नेतन्याहू मुस्कुरा रहे थे, तो वह केवल दो नेताओं का मिलन नहीं था। वह एक नई विश्व व्यवस्था का स्वागत था जहाँ 'तरबूज' की जगह 'केसरिया' ने ले ली है। कूटनीति अब करुणा से नहीं, बल्कि क्षमता से संचालित होगी। उम्मा का सपना अब मरुस्थलीय मृगतृष्णा की तरह लुप्त हो चुका है और उसकी राख पर यथार्थवाद का नया मीनार खड़ा है।

भारत ने अपनी राह चुन ली है। वह अब 'नैतिक उपदेशक' नहीं, बल्कि 'सामरिक खिलाड़ी' बनना चाहता है। और इस प्रक्रिया में यदि पुरानी मित्रताएं मलबे के नीचे दब जाती हैं, तो यथार्थवादी कूटनीति इसे एक अनिवार्य क्षति मानकर आगे बढ़ जाती है।

ढाका का सियासी थिएटर

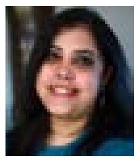

सोहिनी बोस

बांग्लादेश की उथल-पुथल भरी राजनीतिक रंगमंच में मतपेटियां केवल बदलाव का वादा ही नहीं, बल्कि इतिहास की स्मृतियों का भार भी ढोती हैं। जमात-ए-इस्लामी का अब तक का सबसे मजबूत चुनावी उभार बदलते राजनीतिक रुझान का संकेत देता है, लेकिन 1971 की परछाइयाँ, वंशवादी निष्ठाएँ और मतदाताओं की व्यावहारिक अपेक्षाएँ यह बताती हैं कि सत्ता तक पहुँचने की राह अब भी दूर और कठिन है।

बांग्लादेश के उथल-पुथल भरे सियासी थिएटर में, मतपेटियों में जितना भार भविष्य के वादों का होता है, उससे कहीं अधिक बोझ अतीत की स्मृतियों का होता है। हाल ही में संपन्न हुए 13वें आम चुनावों ने इस मुल्क की राजनीति में एक नए अध्याय की शुरुआत तो की है, लेकिन साथ ही यह भी साबित कर दिया है कि दक्षिण एशिया में 'वंशवाद' की जड़ें कितनी गहरी हैं। एक ओर जहां कट्टरपंथी माने जाने वाली पार्टी जमात-ए-इस्लामी ने अपने 47 साल के इतिहास का सबसे शानदार चुनावी प्रदर्शन किया और वह देश के सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में उभरी, वहीं दूसरी ओर बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) की प्रचंड जीत ने यह स्पष्ट कर दिया कि सत्ता के शीर्ष तक पहुंचने का रास्ता आज भी 1971 के मुक्ति संग्राम की छाया और राजनीतिक घरानों की वफादारी से होकर ही गुज़रता है।

इस चुनाव में जमात-ए-इस्लामी ने 11 दलों के गठबंधन का नेतृत्व करते हुए जातीय संसद (बांग्लादेश की संसद) की 299 में से 77 सीटों पर कब्ज़ा जमाया। यह एक ऐसा आंकड़ा था जिसने ढाका से

लेकर नई दिल्ली और वाशिंगटन तक के रणनीतिकारों को चौंका दिया। कई वर्षों तक प्रतिबंधों का दंश झेलने और चुनावी अनुभव की कमी के बावजूद, चुनाव से ठीक पहले के माहौल में जमात इतनी आक्रामक और आत्मविश्वासी नज़र आ रही थी कि मीडिया के एक धड़े ने उसे अगली सरकार के रूप में पेश करना शुरू कर दिया था। उनकी रैलियों में उमड़ती भीड़, सड़कों पर उनके कार्यकर्ताओं का ज़ोरदार प्रदर्शन और उनका तेज़ी से बढ़ता जनाधार इस बात का संकेत दे रहे थे कि हवा का रुख बदल रहा है।

लेकिन जब नतीजे आए, तो बीएनपी की आंधी ने जमात के सत्ता के ख्वाबों को उड़ा दिया। यह नतीजा महज़ हार-जीत का आंकड़ा नहीं है; यह इस बात का समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ है कि क्यों एक अनुशासित कैडर और ज़मीनी नेटवर्क होने के बावजूद, जमात-ए-इस्लामी सत्ता के सिंहासन तक नहीं पहुंच सकी। आइए, उन बुनियादी कमियों और ऐतिहासिक दरारों का विश्लेषण करें जिन्होंने जमात को विपक्ष की कुर्सी तक तो पहुंचा दिया, लेकिन सत्ता की चाबी बीएनपी के 'वंशवाद' के हाथों में ही सौंप दी।

अर्थनीति के नाम पर खोखले नारे

किसी भी आधुनिक लोकतंत्र में चुनाव जीतने के लिए केवल जज़्बात काफी नहीं होते; जनता को एक ठोस आर्थिक रोडमैप चाहिए होता है। जमात-ए-इस्लामी ने 2026 के चुनावों के लिए जो 26-सूत्रीय घोषणापत्र जारी किया, वह एक न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक राज्य बनाने, युवाओं को सशक्त करने और चुनाव में आनुपातिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की बड़ी-बड़ी बातें तो करता था, लेकिन हकीकत में वह एक 'खयाली पुलाव' से ज्यादा कुछ नहीं था।

ढाका के प्रतिष्ठित थिंक-टैंक, सेंटर फॉर पॉलिसी डायलॉग की प्रमुख फहमीदा खातून ने इस घोषणापत्र की धज्जियां उड़ाते हुए कहा कि इसमें दो भारी ढांचागत कमियां थीं। पहली, इसे लागू करने की कोई समय-सीमा नहीं थी, और दूसरी, विभिन्न क्षेत्रों के लिए पैसा कहां से आएगा, इसका कोई स्पष्ट खाका नहीं था। उदाहरण के लिए, जमात ने वादा किया कि वह सार्वजनिक निवेश को जीडीपी के 20 प्रतिशत तक ले जाएगी और 15 अरब डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) लाएगी। लेकिन उस निजी क्षेत्र के निवेश के बारे में उनके दस्तावेज़ पूरी तरह मौन थे, जो किसी भी देश में रोज़गार और विकास का असली इंजन होता है।

पार्टी ने बांग्लादेश को 2 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनाने और सात करोड़ नौकरियां पैदा करने का लोकलुभावन वादा तो कर दिया, लेकिन यह नहीं बताया कि यह चमत्कार किस साल तक और किस निवेश योजना के तहत होगा। बांग्लादेश का वह युवा, जिसने जुलाई 2024 में पूर्व प्रधानमंत्री शेख हसीना की निरंकुश सरकार और 'कोटा सिस्टम' के खिलाफ अपनी जान की बाज़ी लगाकर एक ऐतिहासिक क्रांति को जन्म दिया था, वह अब खोखले नारों से बहलने वाला नहीं था। नेशनल सिटीज़न पार्टी (जुलाई क्रांति का नेतृत्व करने वाले छात्र नेताओं की पार्टी) के साथ गठबंधन करने के बावजूद, जमात का यह हवा-हवाई घोषणापत्र उस युवा पीढ़ी को दिशाभ्रमित कर गया जो बढ़ती महंगाई, गिरती मुद्रा और डगमगाती अर्थव्यवस्था का व्यावहारिक समाधान ढूंढ रही थी।

आधी आबादी का अपमान और 'बायोलॉजिकल' पितृसत्ता

जमात-ए-इस्लामी की राजनीतिक विचारधारा हमेशा से बेहद रूढ़िवादी रही है, विशेषकर सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी को लेकर। चुनाव से ठीक पहले, पार्टी ने खुद को एक आधुनिक और सुधारवादी चोले में पेश करने की भरपूर कोशिश की। उनके घोषणापत्र में तकनीक-संचालित आधुनिक समाज और महिलाओं के लिए एक सुरक्षित, गरिमापूर्ण और सहभागिता वाले माहौल के निर्माण की बातें प्रमुखता से लिखी गई थीं।

लेकिन, पितृसत्ता की जड़ें जब गहरी हों, तो वह बयानों में छलक ही आती है। पार्टी प्रमुख शफीकुर रहमान ने कामकाजी महिलाओं की भूमिका पर जो टिप्पणियां कीं, उन्होंने जमात के 'आधुनिक मुखौटे' को नोंच फेंका। एक न्यूज़ चैनल को दिए गए साक्षात्कार में रहमान ने बेहद बेबाकी (और बेशर्मी) से कह दिया कि 'जैविक भिन्नताओं' (बायोलॉजिकल डिफरेंसेज) के कारण महिलाएं जमात-ए-इस्लामी का नेतृत्व नहीं कर सकतीं। उन्होंने इस्लाम का हवाला देते हुए पार्टी के भीतर महिला नेतृत्व को 'असंभव' करार दिया।

यह बयान उस देश में राजनीतिक आत्महत्या के समान था, जिसकी अर्थव्यवस्था का पूरा पहिया गारमेंट फैक्ट्रियों में काम करने वाली लाखों महिलाओं के पसीने से चलता है। यह उस समाज का अपमान था जिसने 1971 के मुक्ति संग्राम में एक समतामूलक विमर्श गढ़ा था और जिसने दशकों तक शेख हसीना और खालिदा ज़िया के रूप में महिलाओं को सर्वोच्च राष्ट्रीय नेतृत्व सौंपे रखा है। चुनाव से ठीक पहले आए इस रूढ़िवादी और महिला-विरोधी बयान ने नागरिक समाज और महिला मतदाताओं के बीच भारी नाराज़गी पैदा की, और जमात का वोट बैंक सिकुड़ कर रह गया।

संप्रभुता का सौदा और विदेशी आकाओं की परिक्रमा

जुलाई 2024 के छात्र आंदोलन और शेख हसीना के तख्तापलट के दौरान जो एक नैरेटिव सबसे ज्यादा हावी था, वह था 'भारत-विरोध'। विपक्षी ताकतों ने हसीना को नई दिल्ली की 'कठपुतली' के रूप में पेश किया था। ऐसे में, जब हसीना को सत्ता से बेदखल किया गया, तो बांग्लादेशी आवाम के लिए अपनी राष्ट्रीय संप्रभुता की रक्षा करना सबसे बड़ा भावनात्मक मुद्दा बन गया। जनता उस सरकार की तलाश में थी जो किसी भी विदेशी ताकत के दबाव में न हो।

लेकिन ठीक इसी समय, जमात-ए-इस्लामी ने एक बेहद अजीब कूटनीतिक खेल खेलना शुरू कर दिया। ढाका के राजनीतिक हलकों में यह चर्चा आम हो गई कि अमेरिका बांग्लादेश में 'लोकतंत्र की बहाली' के नाम पर जमात का गुप्त रूप से समर्थन कर रहा है। इन कयासों को तब और बल मिला जब अमेरिकी राजनयिकों ने जमात के नेताओं से बैकडोर मुलाकातें शुरू कर दीं। यहां तक कि एक अमेरिकी राजनयिक ने तो इस चिंता को भी खारिज कर दिया कि जमात सत्ता में आकर कट्टरपंथी इस्लामी कानून थोप सकती है। बीएनपी ने इस मौके का शानदार राजनीतिक फायदा उठाया। उसने खुलेआम आरोप लगाया कि जमात ने अमेरिका के साथ 'गुप्त समझौता' कर लिया है और यह बांग्लादेश की शांति, स्थिरता और संप्रभुता के लिए सीधा खतरा है।

सिर्फ अमेरिका ही नहीं, चीन ने भी इस बहती गंगा में हाथ धोए। सितंबर 2024 में बांग्लादेश में चीन के राजदूत याओ वेन ने जमात प्रमुख शफीकुर रहमान से मुलाकात की। 2010 के बाद यह पहला मौका था जब किसी विदेशी राजनयिक ने जमात के ढाका स्थित कार्यालय का दौरा किया था। चीनी राजदूत ने जमात

को एक 'सुसंगठित राजनीतिक दल' बताकर उसकी पीठ थपथपाई। इसके बाद बीजिंग और जमात के बीच प्रतिनिधिमंडलों के दौरों का सिलसिला शुरू हो गया। इन विदेशी मुलाकातों ने बांग्लादेश की आम जनता के मन में यह गहरा संदेह पैदा कर दिया कि जमात सत्ता में आने के बाद अपनी स्वायत्तता बनाए नहीं रख पाएगी और विदेशी आकाओं के इशारे पर नाचेगी।

निर्वासित 'शहज़ादे' की वापसी और वंशवाद का तिलिस्म

शेख हसीना के पतन और अवामी लीग पर लगे प्रतिबंध के बाद जो राजनीतिक शून्यता (पावर वैक्यूम) पैदा हुई, उसमें बीएनपी ही एकमात्र ऐसा दल था जिसके पास सत्ता संभालने का देशव्यापी ढांचा था। हालांकि, बीमार पूर्व प्रधानमंत्री खालिदा ज़िया के अलावा उनके पास कोई ज़मीनी और सक्रिय नेतृत्व नहीं था। इसी शून्यता का फायदा उठाकर जमात ने उन इलाकों में अपनी पैठ बनानी शुरू की जहां बीएनपी कमज़ोर थी।

लेकिन, दक्षिण एशिया की राजनीति में 'वंशवाद' एक ऐसा तिलिस्म है जो हर तर्क और विचारधारा पर भारी पड़ता है। लंदन में अपने स्व-निर्वासित जीवन से बीएनपी के कार्यवाहक अध्यक्ष तारिक रहमान की ढाका वापसी ने इस पूरे राजनीतिक परिदृश्य को पलट कर रख दिया। पूर्व राष्ट्रपति ज़ियाउर रहमान और पूर्व प्रधानमंत्री खालिदा ज़िया के पुत्र के रूप में, तारिक रहमान को बांग्लादेश की जनता ने स्वाभाविक उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार कर लिया।

इस भावना को चरम पर पहुंचाने का काम किया तारिक की वापसी के कुछ ही समय बाद उनकी मां खालिदा ज़िया के निधन ने। चुनाव से ठीक पहले हुई इस मौत ने पूरे देश में बीएनपी के पक्ष में सहानुभूति की एक ऐसी विशाल लहर पैदा कर दी, जिसमें जमात के सारे समीकरण बह गए। बांग्लादेश का राजनीतिक इतिहास गवाह है कि यहां सत्ता का हस्तांतरण हमेशा घरानों के इर्द-गिर्द ही घूमा है—शेख मुजीबुर रहमान से शेख हसीना तक, और ज़ियाउर रहमान से खालिदा ज़िया और अब तारिक रहमान तक। जनता ने जमात के उस अनजान और अनुभवहीन कैडर के बजाय बीएनपी के उस 'जाने-पहचाने चेहरे' और शासन के पुराने तरीके को चुनना ज्यादा सुरक्षित समझा।

1971 के भूत और 'रज़ाकार' का अमिट कलंक

वंशवाद के प्रति आकर्षण की तरह ही, 1971 के मुक्ति संग्राम की यादें बांग्लादेश की राष्ट्रीय पहचान का वह कोर (मूल बिंदु) हैं, जिसे कोई भी राजनीतिक दल नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता। जमात-ए-इस्लामी की सबसे बड़ी कमज़ोरी उसका यही काला इतिहास है। जमात की पूर्ववर्ती संस्था 'जमात-ए-इस्लामी पाकिस्तान' ने बांग्लादेश की आज़ादी का पुरज़ोर विरोध किया था। उन पर मुक्ति वाहिनी (स्वतंत्रता सेनानियों) के खिलाफ पाकिस्तानी सेना के साथ मिलकर भीषण अत्याचार और नरसंहार करने के प्रामाणिक आरोप हैं।

यही कारण है कि बांग्लादेश के आम जनमानस में जमात को आज भी 'रज़ाकार' (गद्दार या देशद्रोही) कहा जाता है। यह महज़ एक शब्द नहीं, बल्कि एक ऐसा गहरा घाव है जो आज तक नहीं भरा है। इसी इतिहास के कारण पार्टी को कई बार प्रतिबंधित किया गया और 1971 के युद्ध अपराधों के लिए उसके शीर्ष नेताओं को अंतरराष्ट्रीय अपराध न्यायाधिकरण द्वारा फांसी की सज़ा दी गई। जमात चाहे जितने भी आधुनिक घोषणापत्र लिख ले, वह 1971 के इस खून के दाग को अपने दामन से नहीं धो सकती।

इसके ठीक विपरीत, तारिक रहमान को अपने पिता ज़ियाउर रहमान की उस विरासत का फायदा मिला, जो 1971 के युद्ध में एक महान स्वतंत्रता सेनानी (मक्तिजोद्धा) के रूप में लड़े थे। इस ऐतिहासिक वैधता ने तारिक की राजनीतिक अनुभवहीनता को पूरी तरह ढंक लिया और बीएनपी को उस ऐतिहासिक जीत तक पहुंचा दिया।

विपक्ष की कुर्सी और आगे की चुनौती

इन तमाम समीकरणों का निष्कर्ष यह है कि जमात-ए-इस्लामी ने भले ही अपने संगठनात्मक ढांचे को मज़बूत किया हो और चुनावी राजनीति में अपनी प्रासंगिकता सिद्ध की हो, लेकिन वह आज भी अपनी ढांचागत, वैचारिक और ऐतिहासिक बेड़ियों में कैद है। अतीत में उसने बीएनपी के साथ गठबंधन करके एक 'जूनियर पार्टनर' की भूमिका निभाई थी। लेकिन आज, जब वह खुद को एक स्वतंत्र राजनीतिक धड़े के रूप में स्थापित करने की कोशिश कर रही है, तो राहें बेहद पथरीली हैं।

सत्ता तक पहुंचने के लिए जमात को अपनी रूढ़िवादी विचारधारा और एक विविधतापूर्ण समाज की आधुनिक मांगों के बीच संतुलन बनाना होगा। उसे 1971 के कलंक का कोई ऐसा प्रायश्चित खोजना होगा जिसे जनता स्वीकार कर सके, और सबसे बढ़कर, उसे खोखले धार्मिक या नैतिक नारों से बाहर निकलकर सुशासन का एक विश्वसनीय और व्यावहारिक मॉडल पेश करना होगा। वंशवाद की वफादारी, मुक्ति संग्राम की भावुकता और आर्थिक यथार्थवाद से संचालित होने वाले इस मुल्क में जमात-ए-इस्लामी की असली परीक्षा अब शुरू हुई है। संसद में सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में बैठना जहां उनके लिए अपनी ताकत को संगठित करने का मौका है, वहीं अब उनकी हर नीति और नीयत पर जनता की सूक्ष्म और कठोर नज़र भी होगी।

(यह आलेख मूल रूप से ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन द्वारा सोहिनी बोस के लेखन के आधार पर प्रकाशित किया गया था, जिसे 'कल्ट करंट' के पाठकों के लिए समकालीन भू-राजनीतिक विश्लेषण और विशेष संपादकीय शैली में पुनर्लिखित किया गया है।)

शांति नहीं नया शीत युद्ध

पॉल बी. स्टेयर्स

संयुक्त अरब अमीरात के राष्ट्रपति शेख मोहम्मद बिन ज़ायेद अल नहयान ने अबू धाबी में संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस और यूक्रेन के बीच हो रही त्रिपक्षीय वार्ता में भाग लेने वाले प्रतिनिधिमंडलों के प्रमुखों से मुलाकात की।

यूक्रेन के पूर्वी मोर्चे पर जमी बर्फ और बारूद के धुएं के बीच, यह युद्ध अब अपने पांचवें वर्ष में प्रवेश कर चुका है। सतह पर देखें तो पूर्ण शांति की संभावनाएं आज भी बेहद क्षीण और अंधकारमय नज़र आती हैं। लेकिन अंतरराष्ट्रीय कूटनीति की बिसात पर कुछ भी स्थायी नहीं होता। पिछले बारह महीनों में, अमेरिका में डोनाल्ड ट्रंप के प्रशासन ने परदे के पीछे से किसी भी तरह एक 'शांति समझौते' या युद्धविराम को थोपने के लिए जो आक्रामक कूटनीतिक चालें चली हैं, उन्होंने कुछ मोर्चों पर आश्चर्यजनक प्रगति की है। हालांकि कई गंभीर बाधाएं अभी भी मौजूद हैं, लेकिन भू-राजनीति के यथार्थ को देखते हुए किसी अचानक होने वाले 'ब्रेकथ्रू' या रातों-रात होने वाले युद्धविराम से पूरी तरह इनकार नहीं किया जा सकता।

जब हम यूक्रेन में 'युद्ध के अगले दिन' (द डे आफ्टर) की बात करते हैं, तो रणनीतिकारों का सारा ध्यान केवल इसी बात पर केंद्रित रहता है कि युद्धविराम के बाद यूक्रेन खुद को कैसे बचाएगा, मार्शल लॉ हटने के बाद वहां की राजनीति कैसे करवट लेगी, और सबसे बढ़कर, उस तबाह हो चुके मुल्क के पुनर्निर्माण का खरबों डॉलर का बिल कौन चुकाएगा। लेकिन इस पूरी बहस में एक सबसे खौफनाक सवाल को जानबूझकर कालीन के नीचे सरका दिया गया है: यूक्रेन में होने वाला यह तथाकथित शांति समझौता पूरे यूरोप के भविष्य के लिए क्या मायने रखेगा?

> यूरोप हमेशा तोपों की गड़गड़ाहट नहीं सुनता रहेगा—लेकिन जब यूक्रेन का युद्ध थम भी जाएगा, उसकी गूंज लंबे समय तक बनी रहेगी। एक घायल महाद्वीप, सतर्क गठबंधन और फिर से उभरता रूस मिलकर शायद एक ऐसी शांति रचें—जो ठंडी, सावधान और गहरे अविश्वास की छाया में ढकी होगी।

सच्चाई यह है कि यूरोप के लिए 'अगला दिन' कैसा होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि 'पिछले दिन' युद्ध किस तरह खत्म हुआ। लेकिन आने वाले संकटों की रूपरेखा अभी से स्पष्ट होने लगी है। यह मान लेना सबसे बड़ी रणनीतिक भूल होगी कि

यूक्रेन में बंदूकें शांत होने का मतलब यूरोप में शांति की बहाली है। इसके ठीक विपरीत, यह शांति समझौता यूरोप के भीतर नए दरार, अमेरिका के साथ ऐतिहासिक कड़वाहट और रूस के साथ एक अंतहीन 'ग्रे-ज़ोन' टकराव की महज़ एक शुरुआत साबित होने वाला है।

कोरियाई प्रायद्वीप का यूरोपीय संस्करण और एक शाश्वत शत्रुता

इस बात की संभावना न के बराबर है कि रूस या यूक्रेन में से कोई भी अपने अधिकतम सैन्य लक्ष्यों को प्राप्त कर पाएगा। यथार्थवादी कूटनीति का तकाज़ा यही है कि यह लड़ाई अंततः एक ऐसी बातचीत या युद्धविराम (आर्मिस्टिस) पर जाकर रुकेगी, जहां यूक्रेन का विभाजन तय है और उसका एक बड़ा हिस्सा स्थायी रूप से रूसी नियंत्रण में चला जाएगा।

इस तरह के अंत को किसी भी कल्पना में एक 'सौहार्दपूर्ण समझौता' नहीं कहा जा सकता। यह बिल्कुल वैसा ही होगा जैसा 1950 के दशक में कोरियाई प्रायद्वीप में हुआ था। उत्तर और दक्षिण कोरिया की तरह, रूस और यूक्रेन आने वाले कई दशकों तक एक-दूसरे को अपने सबसे कट्टर दुश्मन के रूप में ही देखेंगे। यह दुश्मनी समय के साथ शायद थोड़ी कम हो जाए, लेकिन यूरोप के द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के इतिहास को देखते हुए, निकट भविष्य में ऐसा होना असंभव लगता है; विशेषकर तब तक, जब तक व्लादिमीर पुतिन क्रेमलिन की सत्ता पर काबिज हैं।

नाटो और यूरोपीय संघ के गलियारों में यह आम सहमति बन चुकी है कि रूस आने वाले कई वर्षों तक यूरोप के लिए सबसे बड़ा सुरक्षा खतरा बना रहेगा। एक संप्रभु राष्ट्र पर जिस तरह से रूस ने बर्बर आक्रमण किया है, उसके बाद उसे एक 'सामान्य पड़ोसी' के रूप में देखने की गलती कोई भी यूरोपीय देश नहीं करेगा। बल्कि, कई सैन्य विश्लेषकों का मानना है कि यूक्रेन में शांति समझौते के बाद रूस का खतरा कम होने के बजाय और अधिक विकराल हो जाएगा।

पुतिन यूक्रेन में मिली इस सामरिक मोहलत का इस्तेमाल अपनी थकी हुई सेना को फिर से खड़ा करने और अपने शस्त्रागार को आधुनिक बनाने में करेंगे। युद्धविराम के बाद यूक्रेन में पैदा होने वाली संभावित आंतरिक कलह का फायदा उठाकर रूस दोबारा हमला कर सकता है। इससे भी अधिक खतरनाक बात यह है कि रूस नाटो और यूरोपीय संघ के संकल्प को परखने के लिए लगातार 'हाइब्रिड' या 'ग्रे-ज़ोन' हमले करेगा, साइबर युद्ध छेड़ेगा और संभवतः सीमित सैन्य घुसपैठ को भी अंजाम देगा। स्पष्ट है कि वर्तमान टकराव खत्म नहीं होगा, बल्कि यह एक ऐसे नए शीत युद्ध में तब्दील हो जाएगा जो पुराने शीत युद्ध से कहीं अधिक अस्थिर और अप्रत्याशित होगा।

'ट्रंप 2.0' और अटलांटिक के दोनों किनारों पर दरकती ज़मीन

यूक्रेन में शांति के बाद यूरोप की एकता की सबसे कठिन परीक्षा अमेरिका और यूरोप (ट्रांसअटलांटिक) के रिश्तों में आने वाली कड़वाहट से होगी। ट्रंप प्रशासन के सत्ता में आने के बाद से ही ये दरारें स्पष्ट होने लगी हैं। अमेरिका पहले ही यूक्रेन को दी जाने वाली अपनी प्रत्यक्ष सैन्य सहायता में भारी कटौती कर चुका है। आज, यूक्रेन के सैन्य साजो-सामान का सबसे बड़ा बोझ यूरोपीय देश उठा रहे हैं।

लेकिन यहां एक बड़ा आर्थिक पेंच है। यूरोपीय देश यूक्रेन को जो हथियार दे रहे हैं, उनमें से अधिकांश वे अमेरिकी कंपनियों से खरीद रहे हैं। अब जब यूरोप अपनी खुद की 'डिफेंस इंडस्ट्रियल बेस' (रक्षा औद्योगिक आधार) विकसित करने और अमेरिकी हथियार लॉबी पर अपनी निर्भरता कम करने की कोशिश कर रहा है, तो वाशिंगटन और ब्रुसेल्स के बीच हथियारों के बाज़ार को लेकर एक भीषण और कड़वा व्यापारिक युद्ध छिड़ना तय है।

हालांकि, यह व्यापारिक टकराव उस भूचाल के सामने कुछ भी

नहीं है जो प्रतिबंधों को हटाने को लेकर आने वाला है। कूटनीतिक सूत्रों और मीडिया रिपोर्ट्र्स के अनुसार, ट्रंप प्रशासन युद्ध समाप्त होते ही रूस के साथ अपने आर्थिक संबंधों को तेज़ी से सामान्य करने की तैयारी कर रहा है। क्रेमलिन के साथ बड़े निवेश और व्यापारिक सौदों पर परदे के पीछे बातचीत चल रही है।

ज़रा सोचिए, जब अमेरिका खुद पुतिन के साथ व्यापार शुरू कर देगा, तो यूरोप के उन देशों का क्या होगा जिन्होंने अमेरिका के ही कहने पर अपनी अर्थव्यवस्था को दांव पर लगाकर रूस पर कठोर प्रतिबंध लगाए थे? यूरोप में यह खौफ गहरा रहा है कि अमेरिका उन्हें व्यापारिक मोर्चे पर कमज़ोर करके खुद रूस के बाज़ार पर कब्ज़ा कर लेगा। इसके अलावा, ट्रंप की 'अमेरिका फर्स्ट' नीति के तहत इंडो-पैसिफिक क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित करने के लिए यूरोप से अमेरिकी सैनिकों की वापसी का खतरा भी मंडरा रहा है। अमेरिका की इस रणनीतिक वापसी के बाद खुद को कैसे बचाया जाए, इस खौफ ने यूरोप के कुछ देशों में अपने स्वयं के परमाणु हथियार विकसित करने की एक बेहद खतरनाक बहस को जन्म दे दिया है।

यूरोपीय संघ के भीतर सुलगता गृहयुद्ध: उत्तर बनाम दक्षिण

बाहर से देखने पर ऐसा लगता है कि यूक्रेन युद्ध ने यूरोपीय देशों को अभूतपूर्व रूप से एकजुट कर दिया है। उन्होंने रातों-रात रूस से मिलने वाली सस्ती ऊर्जा पर अपनी निर्भरता खत्म कर दी और इसके भारी आर्थिक परिणाम भी झेले। लेकिन शांति का ऐलान होते ही यह कृत्रिम एकता ताश के पत्तों की तरह बिखर जाएगी।

यूरोप के भीतर एक खामोश गृहयुद्ध सुलग रहा है। उत्तरी यूरोप और विशेष रूप से रूस की सीमा से लगे 'फ्रंटलाइन' देशों (जैसे पोलैंड, लिथुआनिया, एस्टोनिया) ने इस युद्ध में अपनी अर्थव्यवस्था के आकार के अनुपात में सबसे अधिक बोझ उठाया है। जब युद्धविराम होगा, तो स्पेन, इटली या पुर्तगाल जैसे दक्षिणी यूरोपीय देश चाहेंगे कि अब रक्षा बजट कम किया जाए और अर्थव्यवस्था पर ध्यान दिया जाए। लेकिन फ्रंटलाइन देश इसके सख्त खिलाफ होंगे। उनका तर्क होगा कि रूस कभी भी हमला कर सकता है।

शांति समझौता इन आंतरिक दरारों को एक खाई में बदल देगा। अगर दक्षिणी देशों को लगा कि उनकी अपनी आर्थिक और सुरक्षा प्राथमिकताओं को सिर्फ रूस को रोकने के नाम पर दरकिनार किया जा रहा है, तो यूरोपीय संघ के भीतर विद्रोह की स्थिति पैदा हो सकती है। नाटो के कुछ फ्रंटलाइन देशों को यह भी डर है कि 'कोएलिशन ऑफ द विलिंग' (इच्छुक देशों का गठबंधन) के नाम पर यूक्रेन को सैन्य समर्थन देने की होड़ में, नाटो के सदस्य देश अपने ही मूल सामूहिक रक्षा दायित्वों से मुंह मोड़ सकते हैं।

बारेंट्स से लेकर काला सागर तक: एक 'एक्सीडेंटल' विश्व युद्ध का बारूद

युद्धविराम के बाद सुदूर उत्तर में बारेंट्स सागर से लेकर दक्षिण-

पूर्व में काले सागर तक एक नई नाटो-रूस सीमा या 'लाइन ऑफ कॉन्टैक्ट' खिंच जाएगी। यह सीमा शीत युद्ध के दौरान जर्मनी के बीच खींची गई उस लोहे की दीवार (आयरन कर्टन) जैसी तो नहीं होगी जहां दोनों सेनाएं चौबीसों घंटे युद्ध के लिए तैयार रहती थीं, लेकिन यह उससे कहीं अधिक संवेदनशील और खतरनाक होगी।

वर्तमान में जो तनाव का माहौल है, उसके अचानक या किसी गलतफहमी के कारण सशस्त्र संघर्ष में बदलने का जोखिम सबसे ऊंचे स्तर पर होगा। रूस नाटो की सीमा पर लगातार भड़काऊ गतिविधियां कर रहा है। उसका उद्देश्य नाटो देशों को डराना और यह देखना है कि वे संकट की स्थिति में कैसे प्रतिक्रिया देते हैं। सबसे बड़ा खतरा यह है कि रूस नाटो के संकल्प का गलत आकलन कर ले, या नाटो का कोई एक कमांडर घबराहट में किसी रूसी ड्रोन या विमान पर गोली चला दे। आने वाले वर्षों में दोनों पक्षों के सैन्य अभ्यास बढ़ेंगे, उनकी सेनाएं हवा और समुद्र में बार-बार आमने-सामने होंगी। ऐसे में किसी छोटी सी मानवीय भूल या दुर्घटना के कारण एक ऐसी श्रृंखला शुरू हो सकती है जिसे रोकना किसी के बस में नहीं होगा।

भविष्य का ब्लूप्रिंट: महाविनाश से बचने के चार कूटनीतिक रास्ते

इन खौफनाक संभावनाओं को देखते हुए, अमेरिका और यूरोपीय रणनीतिकारों को अभी से कमर कस लेनी चाहिए। जब तक यूक्रेन में शांति आती है, तब तक निम्नलिखित संस्थागत और कूटनीतिक कदम उठाए जाने चाहिए:

पहला, ग्रुप ऑफ सेवन (जी-7) के सदस्य देशों को रूस के साथ भविष्य के राजनीतिक और आर्थिक संबंधों को प्रबंधित करने के लिए एक विशेष वर्किंग ग्रुप बनाना चाहिए। जी-7 ने रूस पर प्रतिबंध लगाने में अहम भूमिका निभाई है। अगर ट्रंप प्रशासन इस साल जून में फ्रांस में होने वाले जी-7 शिखर सम्मेलन में इसका

नेतृत्व करता है, तो यह पश्चिमी दुनिया में एकरूपता ला सकता है। इसके साथ ही, यूरोपीय संघ को वाशिंगटन का इंतज़ार किए बिना रूस के प्रति अपनी खुद की दीर्घकालिक रणनीति बनानी चाहिए। यूरोप को यह समझना होगा कि अमेरिका के हित अब उसके हितों से अलग हो सकते हैं, इसलिए उसे क्रेमलिन के साथ एक सीधा और उच्च स्तरीय राजनीतिक चैनल स्थापित करना ही होगा।

दूसरा, नाटो नेताओं को गठबंधन के भविष्य पर एक नया 'हार्मेल रिपोर्ट' तैयार करना चाहिए। 1967 में बेल्जियम के विदेश मंत्री पियरे हार्मेल के नेतृत्व में बनी मूल रिपोर्ट ने नाटो की 'दोहरी रणनीति' (ड्युअल-ट्रैक स्ट्रेटजी) की नींव रखी थी—यानी एक तरफ सैन्य प्रतिरोध (डिटरेंस) को मज़बूत करना और दूसरी तरफ सोवियत संघ के साथ तनाव कम करना (देंतात)। हालांकि आज हालात 1960 के दशक से बहुत अलग हैं, लेकिन नाटो को आज भी एक ऐसे स्पष्ट विज़न की आवश्यकता है जहां वह रूस के किसी भी आक्रमण का मुंहतोड़ जवाब देने की तैयारी रखे, लेकिन साथ ही मॉस्को को यह भी भरोसा दिलाए कि नाटो की नीयत शांतिपूर्ण है। इसे 2027 तक पूरा किया जाना चाहिए।

तीसरा, अमेरिका और उसके यूरोपीय सहयोगियों को रूस के सामने यूरोप-व्यापी 'जोखिम न्यूनीकरण' (रिस्क रिडक्शन) के नए उपाय पेश करने चाहिए। यूक्रेन में शांति के प्रयासों के हिस्से के रूप में, पश्चिम को यह संकेत देना चाहिए कि वह यूरोप में युद्ध के जोखिम को कम करने के लिए बातचीत को तैयार है। इसमें दिसंबर 2021 में (यूक्रेन पर आक्रमण से ठीक पहले) रूस द्वारा नाटो और अमेरिका को सौंपे गए दो मसौदा संधियों (ड्राफ्ट ट्रीटी) के कुछ बिंदुओं पर फिर से विचार करना शामिल होना चाहिए। उस समय बाइडन प्रशासन ने इन पर चर्चा करने में कुछ दिलचस्पी दिखाई थी। सीमा पर निगरानी रखने वाले उपकरणों और हथियारों की तैनाती सीमित करने जैसे उपाय नाटो-रूस सीमा को स्थिर कर सकते हैं।

चौथा और अंतिम, 'ऑर्गेनाइजेशन फॉर सिक्योरिटी एंड कोऑपरेशन इन यूरोप' (ओएससीई) को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। वर्तमान में यह संस्था लगभग मृत पड़ी है। हालांकि शीत युद्ध के बाद हुए समझौतों का जो हश्र रूस ने किया है, उसे देखते हुए ओएससीई की प्रभावशीलता पर गहरा संदेह है। लेकिन यथार्थ यह है कि आज पूरे यूरोप को एक मंच पर लाने वाली इसके अलावा कोई दूसरी संस्था मौजूद नहीं है। एक नई संस्था बनाने में कई दशक लग जाएंगे, इसलिए इसी पुराने ढांचे में जान फूंकना समय की मांग है।

यथार्थ का सामना

भले ही आज यूक्रेन में युद्ध का अंत एक कूटनीतिक मृगतृष्णा लगता हो, लेकिन इतिहास गवाह है कि युद्ध उसी वक्त खत्म होते हैं जब किसी को उनकी उम्मीद नहीं होती। अमेरिका और यूरोप के लिए युद्ध के बाद की दुनिया की तैयारी करना अब कोई विकल्प नहीं, बल्कि अस्तित्व की अनिवार्यता है। एक शांति समझौता समाधान नहीं, बल्कि जटिलताओं के एक नए और अधिक खतरनाक अध्याय की प्रस्तावना होगा। जब वह क्षण आए, तो उस पर प्रतिक्रिया देने के बजाय, आज ही उसकी ज़मीन तैयार करना यथार्थवादी कूटनीति का पहला उसूल है। शांति कभी भी शून्य में नहीं आती; इसे उन लोगों द्वारा आकार दिया जाता है जो युद्ध के बीच बैठकर भी भविष्य के नक्शे उकेरने का साहस रखते हैं।

(यह आलेख मूल रूप से काउंसिल ऑन फॉरेन रिलेशंस द्वारा प्रकाशित किया गया था, जिसे 'कल्ट करंट' के पाठकों के लिए समकालीन भू-राजनीतिक विश्लेषण और विशेष संपादकीय शैली में पुनर्लिखित किया गया है। आलेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं और कल्ट करंट की संपादकीय लाइन का प्रतिनिधित्व नहीं करते। काउंसिल ऑन फॉरेन रिलेशंस एक स्वतंत्र और गैर-पक्षपाती संस्था है, जो नीतिगत मामलों पर संस्थागत रुख नहीं अपनाती है।)

प्रत्नश्री बसु

होर्मुज का 'डेथ ट्रैप'

ईरान की हॉर्मुज़ जलडमरूमध्य बंद करने की धमकी ने वैश्विक ऊर्जा बाज़ारों में हलचल मचा दी है। तेल की कीमतों में उछाल के साथ यह संकट समुद्री चोकपॉइंट्स की भू-राजनीतिक ताकत और आपूर्ति श्रृंखलाओं की नाज़ुकता को उजागर करता है।

भू-राजनीति के क्रूर यथार्थ में कुछ भौगोलिक लकीरें ऐसी होती हैं, जो महज़ नक्शे का हिस्सा नहीं होतीं, बल्कि पूरी मानव सभ्यता की जीवनरेखा होती हैं। फारस की खाड़ी और ओमान की खाड़ी के बीच मौजूद पानी का यह संकरा सा गला, जिसे दुनिया 'होर्मुज जलडमरूमध्य' (स्ट्रेट ऑफ होर्मुज) के नाम से जानती है, आधुनिक वैश्वीकरण की सबसे अहम और सबसे कमज़ोर नस है। वर्ष 2026 के शुरुआती महीनों में, दुनिया ने इस नस को कटते हुए देखा है। जब मध्य-पूर्व में अमेरिका, इज़राइल और ईरान के बीच का छद्म युद्ध अपने

चरम पर पहुंचा और ईरानी ज़मीन पर समन्वित सैन्य हमले हुए, तो तेहरान ने वह 'ब्रह्मास्त्र' निकाल लिया जिसका खौफ पश्चिमी दुनिया को दशकों से था।

2 मार्च 2026 की उस ऐतिहासिक सुबह, ईरान के इस्लामिक रिवोल्यूशनरी गार्ड कॉर्प्स (आईआरजीसी) ने एकतरफा घोषणा कर दी कि होर्मुज का यह जलमार्ग अब वाणिज्यिक नौवहन के लिए पूरी तरह से बंद है। आईआरजीसी का फरमान बिल्कुल साफ और खौफनाक था- जो भी मालवाहक जहाज़ या तेल का टैंकर इस संकरे रास्ते से गुज़रने की कोशिश करेगा, उसे ईरान और उसके सहयोगियों का सीधा सैन्य निशाना बनना होगा। यह केवल एक समुद्री नाकाबंदी नहीं थी; यह पूरी वैश्विक अर्थव्यवस्था के खिलाफ घोषित किया गया एक ऐसा विश्व युद्ध था, जिसमें गोलियों से ज्यादा खौफ बीमा कंपनियों और शेयर बाज़ारों के ढहते आंकड़ों का था।

33 किलोमीटर का वह संकरा गला और पूंजीवाद का बंधक होना

होर्मुज के महत्व को केवल आंकड़ों की बाज़ीगरी से नहीं समझा जा सकता। अपने सबसे संकरे बिंदु पर यह जलमार्ग मुश्किल से 33 किलोमीटर चौड़ा है। लेकिन इसी 33 किलोमीटर के खारे पानी से होकर दुनिया का लगभग 20 प्रतिशत कच्चा तेल और तरलीकृत प्राकृतिक गैस (एलएनजी) का एक बहुत बड़ा हिस्सा हर दिन गुज़रता है। सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, कुवैत और कतर जैसे ऊर्जा के कुबेरों का सारा खज़ाना इसी रास्ते से निकलकर एशिया और यूरोप की प्यास बुझाता है।

ईरान की यह घोषणा कोई अचानक लिया गया फैसला नहीं था। यह 'असममित युद्ध' (एसिमेट्रिक वारफेयर) की एक सोची-समझी और निर्मम रणनीति थी। जब पारंपरिक सैन्य शक्ति में आप अमेरिका या इज़राइल का मुकाबला नहीं कर सकते, तो आप उस भौगोलिक चोकपॉइंट (बाधा-बिंदु) पर अपना हाथ रख देते हैं, जहां से आपके दुश्मन का आर्थिक खून बहता है। होर्मुज को बंद करके ईरान ने वाशिंगटन, लंदन से लेकर बीजिंग और नई दिल्ली तक सबको एक झटके में बंधक बना लिया। यह दुनिया को यह बताने का ईरानी तरीका था कि यदि हमारी ज़मीन पर बम गिरेंगे, तो आपकी फैक्ट्रियों के पहिए भी नहीं घूमेंगे।

समुद्री लकवा: जब जहाज़ नहीं, बीमा कंपनियों के खौफ ने दुनिया रोकी

इस नाकाबंदी का तात्कालिक और सबसे भयानक असर समुद्र में तैरते उन लोहे के दैत्यों पर पड़ा, जिन्हें हम कंटेनर शिप या सुपर-टैंकर कहते हैं। आम जनता को लगता है कि समुद्री व्यापार नौसेनाओं के दम पर चलता है, लेकिन हकीकत में यह बीमा कंपनियों के रहमोकरम पर टिका होता है।

जैसे ही ईरान की चेतावनी दुनिया भर के न्यूज़ टिकर्स पर फ्लैश हुई, अंतरराष्ट्रीय टैंकर कंपनियों और कंटेनर ऑपरेटरों में अफरा-तफरी मच गई। बुकिंग तुरंत रोक दी गईं और होर्मुज को पार करने वाले सारे ट्रांज़िट रद्द कर दिए गए। लेकिन असली खेल पर्दे के पीछे हुआ। दुनिया के सबसे बड़े समुद्री बीमाकर्ताओं (मरीन इंश्योरेंस कंपनियों) ने रातों-रात इस रूट के लिए अपना इंश्योरेंस कवर वापस लेना शुरू कर दिया। जिन कंपनियों ने जोखिम उठाने की हिम्मत दिखाई, उन्होंने अपने प्रीमियम में 50 प्रतिशत तक का भारी-भरकम इजाफा कर दिया।

बिना बीमा के, करोड़ों डॉलर का तेल लेकर कोई भी कप्तान अपने जहाज़ को इस 'डेथ ज़ोन' में ले जाने का जोखिम नहीं उठा सकता। नतीजा यह हुआ कि होर्मुज के मुहाने पर दुनिया के कुल कंटेनर बेड़े का लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा एक भयानक बॉटलनेक (जाम) में फंस गया। यह संकट इस बात का सबसे क्रूर और जीवंत उदाहरण है कि कैसे भू-राजनीतिक जोखिम महज़ चंद घंटों के भीतर पूरी दुनिया में 'लॉजिस्टिक पैरालिसिस' (रसद का लकवा) पैदा कर सकता है।

ऊर्जा बाज़ारों में सूनामी: एक झटके में राख होते मुनाफे

इस समुद्री नाकाबंदी ने अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा बाज़ारों में जो सूनामी पैदा की, उसकी लहरें हर शेयर बाज़ार और हर कमोडिटी एक्सचेंज तक पहुंचीं। ईरान के ऐलान के कुछ ही घंटों के भीतर, बाज़ार के मनोवैज्ञानिक खौफ और सीधे सप्लाई रुकने के डर से ब्रेंट क्रूड ऑयल की कीमतों में 8.6 प्रतिशत का भयानक उछाल आ गया।

यह केवल सटोरियों का खेल नहीं था। व्यापारी इस हकीकत को पचाने की कोशिश कर रहे थे कि अगर यह चोकपॉइंट लंबे समय तक बंद रहा, तो एशिया और यूरोप के ऊर्जा प्रवाह का

क्या होगा। अर्थशास्त्र का सीधा सा नियम है कि जब ऊर्जा महंगी होती है, तो सब कुछ महंगा हो जाता है। बहुत बड़े कच्चे तेल के वाहकों (वीएलसीसी) के लिए मालभाड़े की लागत आसमान छूने लगी। परिवहन, औद्योगिक उत्पादन और यहां तक कि खेती की लागत भी रातों-रात बढ़ गई। लॉजिस्टिक्स के इस पूरे इकोसिस्टम में बढ़ी हुई लागतें स्थायी रूप से जुड़ गईं, जिसने दुनिया भर के शिपर्स और खरीदारों के प्रॉफिट मार्जिन को निचोड़ कर रख दिया।

केप ऑफ गुड होप का खर्चीला और थकाऊ विकल्प

जब सीधा रास्ता मौत के साए में हो, तो इंसान सबसे लंबा रास्ता चुनता है। शिपिंग कंपनियों ने आनन-फानन में अपने जहाज़ों को अफ्रीका के दक्षिणी छोर 'केप ऑफ गुड होप' से घुमाकर ले जाने का फैसला किया। लेकिन यह कोई आसान विकल्प नहीं है। अफ्रीका का पूरा चक्कर लगाने का मतलब है सफर में हफ्तों की देरी, लाखों डॉलर का अतिरिक्त ईंधन खर्च और दुनिया के अन्य बंदरगाहों पर जहाज़ों का भयानक ट्रैफिक जाम।

ये महज़ कुछ जहाज़ों के देर से पहुंचने की बात नहीं है। यह देरी वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला के इन्वेंट्री चक्र (भंडारण की अवधि), डिलीवरी के शेड्यूल और अंततः आयात करने वाले देशों में उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों को सीधे तौर पर प्रभावित करती है। एक सुपर-टैंकर के दस दिन देर से पहुंचने का मतलब है किसी देश में पेट्रोल पंपों का सूखना और महंगाई दर का अनियंत्रित हो जाना।

भारत की दुखती रग: विकास की कहानी पर मंडराता भू-राजनीतिक ग्रहण

इस वैश्विक संकट ने भारत की उस भू-राजनीतिक और आर्थिक कमज़ोरी को पूरी तरह से बेनकाब कर दिया है, जिसे नई दिल्ली अक्सर अपनी कूटनीतिक सफलताओं के शोर में दबाने की कोशिश करती है। आंकड़े चीख-चीख कर गवाही देते हैं कि भारत के मासिक तेल आयात का लगभग आधा हिस्सा इसी होर्मुज जलडमरूमध्य से होकर गुज़रता है।

जैसे ही होर्मुज में टैंकरों के पहिए थमे, नई दिल्ली के साउथ ब्लॉक में आपातकालीन बैठकों का दौर शुरू हो गया। भारत सरकार ने तुरंत प्रभाव से भारतीय झंडे वाले सभी जहाज़ों के लिए चरम सावधानी बरतने की एडवायज़री जारी कर दी। भारत के लिए यह दोहरा संकट है। एक तरफ हमारे नाविकों की जान खतरे में है, तो दूसरी तरफ देश की ऊर्जा सुरक्षा दांव पर लगी है। भारत के रणनीतिक पेट्रोलियम रिज़र्व (भंडार) इतने विशाल नहीं हैं कि वे किसी लंबी नाकाबंदी का महीनों तक सामना कर सकें। अगर होर्मुज से कच्चे तेल और एलएनजी की सप्लाई कुछ और

हफ्तों तक बाधित रहती है, तो भारत का आयात बिल आसमान छू जाएगा, रुपया डॉलर के मुकाबले औंधे मुंह गिरेगा, और पेट्रोल-डीज़ल की कीमतें बढ़ने से वह महंगाई पैदा होगी जो सीधे तौर पर सत्ता के समीकरणों को हिला सकती है।

चीन, जापान और यूरोप: जब कारखाने ईंधन के लिए तरसने लगे

भारत अकेला नहीं है जो इस आग की तपिश महसूस कर रहा है। ड्रैगन के लिए भी यह एक अस्तित्व का संकट है। चीन दुनिया में कच्चे तेल का सबसे बड़ा आयातक है। हालांकि चीन ने हाल के वर्षों में रूस से ज़मीनी रास्तों से तेल लेना शुरू किया है, लेकिन उसकी औद्योगिक भूख इतनी विशाल है कि बिना खाड़ी के तेल के उसकी फैक्ट्रियों के चिमनी से धुआं निकलना बंद हो जाएगा। होर्मुज के बंद होने का सीधा असर चीन की रिफाइनरियों की क्षमता पर पड़ा है। ईंधन महंगा होने से चीनी उत्पादों की लागत बढ़ गई है, जिससे वैश्विक बाज़ार में उसकी निर्यात प्रतिस्पर्धात्मकता (एक्सपोर्ट कॉम्पिटिटिवनेस) बुरी तरह

चरमरा रही है।

जापान और दक्षिण कोरिया की हालत तो और भी दयनीय है। ये दोनों देश आर्थिक रूप से बेहद संपन्न हैं, लेकिन प्राकृतिक संसाधनों के मामले में पूरी तरह से कंगाल हैं। उनका पूरा विकास मॉडल आयातित एलएनजी और कच्चे तेल पर टिका है। होर्मुज में कुछ दिनों की देरी का मतलब है टोक्यो और सियोल में बिजली घरों का उत्पादन धीमा पड़ना। उन्हें मजबूरन अपने आपातकालीन भंडारों को खोलना पड़ा है।

दूसरी ओर, यूरोपीय संघ (ईयू) जो अभी तक रूस-यूक्रेन युद्ध के कारण पैदा हुए ऊर्जा संकट के झटके से पूरी तरह उबर भी नहीं पाया था, उसके लिए यह नया संकट किसी डरावने सपने से कम नहीं है। यूरोप में जैसे ही ऊर्जा महंगी होती है, 'कॉस्ट-ऑफ-लिविंग' (जीवन यापन की लागत) का संकट विकराल हो जाता है। महंगाई पर काबू पाने के लिए यूरोपीय सेंट्रल बैंक को अपनी मौद्रिक नीतियों को और सख्त करना पड़ रहा है, जिससे यूरोप की आर्थिक वृद्धि दर मंदी की ओर धकेली जा रही है।

भू-अर्थशास्त्र का नया सबक: चोकपॉइंट्स अब 21वीं सदी के हथियार हैं

मार्च 2026 का यह होर्मुज संकट दुनिया के लिए महज़ एक चेतावनी नहीं, बल्कि एक 'सिस्टमिक स्ट्रेस टेस्ट' (प्रणालीगत तनाव परीक्षण) है। यह संकट पूरी तरह से नंगा कर देता है कि हमारी 'जस्ट-इन-टाइम' ग्लोबल सप्लाई चेन कितनी खोखली और कमज़ोर है। कुछ अर्थशास्त्रियों को लगता था कि मुक्त व्यापार और वैश्वीकरण ने दुनिया को इतना जोड़ दिया है कि कोई भी देश वैश्विक व्यापार को रोकने की जुर्रत नहीं करेगा। लेकिन ईरान ने यह साबित कर दिया है कि जब बात शासन के अस्तित्व और भू-राजनीतिक वर्चस्व की आती है, तो समुद्री चोकपॉइंट्स सक्रिय हथियारों में तब्दील हो जाते हैं।

यह कोई ऐसा संकट नहीं है जिसे केवल कूटनीतिक निंदा या कुछ युद्धपोतों की गश्त से सुलझाया जा सके। यह एक संरचनात्मक विफलता है। दुनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं ने दशकों तक अपने ऊर्जा प्रवाह को एक ही संकरी भौगोलिक नली पर निर्भर रहने दिया।

अब समय आ गया है कि दुनिया इस 'भौगोलिक एकाधिकार' को तोड़े। इस संकट ने 'इंडिया-मिडिल ईस्ट-यूरोप इकोनॉमिक कॉरिडोर' (आईएमईसी) और 'इंटरनेशनल नॉर्थ-साउथ ट्रांसपोर्ट कॉरिडोर' (आईएनएसटीसी) जैसे वैकल्पिक वाणिज्यिक गलियारों के निर्माण की आवश्यकता को और अधिक प्रासंगिक बना दिया है। जब तक दुनिया ऊर्जा के नए स्रोत और वैकल्पिक समुद्री व ज़मीनी मार्ग विकसित नहीं करती, तब तक वह होर्मुज जैसे चोकपॉइंट्स पर बैठी सत्ताओं के रहमोकरम पर ही ज़िंदा रहेगी।

मध्य-पूर्व में जो आग लगी है, वह हाल के दशकों की सबसे भयंकर आग है। रणभूमि के बाहर, यह संकट इस बात का कड़वा सच है कि आधुनिक दुनिया चाहे कितनी भी डिजिटल और हाई-टेक क्यों न हो जाए, उसका असली नियंत्रण आज भी समुद्र की उन संकरी लहरों और भू-राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के बीच ही फंसा हुआ है। दुनिया को अब केवल संकट प्रबंधन (क्राइसिस मैनेजमेंट) नहीं, बल्कि एक ऐसे 'स्ट्रक्चरल रेज़िलिएंस' (संरचनात्मक लचीलेपन) की आवश्यकता है, जो किसी एक चोकपॉइंट के बंद होने पर पूरी सभ्यता को लकवाग्रस्त होने से बचा सके।

(यह आलेख विशेष रूप से कल्ट करंट के पाठकों के लिए समकालीन भू-राजनीतिक विश्लेषण और 'स्पेक्युलेटिव जर्नलिज़्म' की विशिष्ट संपादकीय शैली में प्रस्तुत किया गया है।)

तेल, कूटनीति और युद्ध

अनवर हुसैन

जैसे-जैसे फ़ारस की खाड़ी पूर्ण युद्ध की दहलीज़ पर डगमगा रही है, भारत के सामने एक कठिन संतुलन साधने की चुनौती खड़ी हो गई है। लगभग 90 लाख भारतीयों की सुरक्षा से लेकर अपनी ऊर्जा आपूर्ति सुनिश्चित करने तक, नई दिल्ली को अब ऐसे भू-राजनीतिक बारूदी मैदान में कदम रखना पड़ रहा है, जहाँ रणनीतिक स्वायत्तता का आदर्श कठोर यथार्थ से टकरा रहा है।

फारस की खाड़ी से उठती युद्ध की लपटें भारत के सामरिक गलियारों में बेचैनी पैदा कर रही हैं। ईरान, इजराइल और अमेरिका के बीच बढ़ते तनाव ने नई दिल्ली को एक ऐसी जटिल भू-राजनीतिक दुविधा में डाल दिया है जिसका कोई आसान समाधान नहीं है। दुनिया की सबसे बड़ी आबादी और सबसे तेजी से बढ़ती प्रमुख अर्थव्यवस्था के लिए यह केवल एक दूरस्थ कूटनीतिक घटना नहीं है; यह भारत की घरेलू स्थिरता, राजकोषीय स्थिति और लाखों नागरिकों की सुरक्षा से जुड़ा एक अस्तित्वगत प्रश्न है। भारत आज एक ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहाँ उसे अपनी ऊर्जा सुरक्षा और वैश्विक कूटनीतिक संतुलन के बीच एक बारीक लकीर खींचनी है।

ऊर्जा की ढाल: बफर बनाम बाजार की हकीकत

भारत की सबसे बड़ी चिंता वैश्विक तेल बाजार की अस्थिरता है। अपनी कच्चे तेल की जरूरतों का 85% से अधिक आयात करने के कारण भारत आपूर्ति श्रृंखला में किसी भी झटके के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है। यद्यपि सरकार 'निरंतर निगरानी' का भरोसा दे रही है, लेकिन हकीकत चुनौतीपूर्ण है। भौतिक कमी को तो कुछ समय के लिए टाला जा सकता है, लेकिन 'प्राइस शॉक' यानी कीमतों का झटका अपरिहार्य है।

विशेषज्ञों का कहना है कि भारत के पास अपनी रिफाइनरियों में लगभग 50 दिनों का पेट्रोलियम भंडार है, जो आपूर्ति में बाधा आने पर एक अस्थायी सुरक्षा कवच प्रदान करता है। लेकिन वैश्विक बाजार में कीमतों पर असर तत्काल होता है। भले ही तेल की एक बूंद की कमी न हो, केवल युद्ध की आशंका ही तेल की कीमतों को 95 डॉलर प्रति बैरल के पार ले जा सकती है, जिससे भारत का आयात बिल बढ़ेगा और रुपया कमजोर होगा।

होर्मुज जलडमरूमध्य: भारत की कमजोर कड़ी

इस संकट का भौगोलिक केंद्र 'होर्मुज जलडमरूमध्य' है। दुनिया के कुल तेल व्यापार का लगभग पांचवां हिस्सा इसी संकरे मार्ग से गुजरता है। भारत के लिए इस मार्ग का कोई वित्तीय या सामरिक विकल्प नहीं है। भारत के पास विशाखापत्तनम, मंगलुरु और पादुर के सामरिक भंडारों में लगभग 10 करोड़ बैरल कच्चा तेल है, जो संकट की स्थिति में 30 से 40 दिनों का बैकअप प्रदान करता है।

रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद भारत ने अपने आपूर्तिकर्ताओं की संख्या 27 से बढ़ाकर 40 कर ली है, लेकिन होर्मुज जलमार्ग के बंद होने की स्थिति में यह विविधता भी कम पड़ सकती है। यदि यह मार्ग अवरुद्ध हुआ, तो भारतीय अर्थव्यवस्था की रफ्तार पर ब्रेक लगना तय है।

रूस का कारक और कूटनीतिक अग्नि-परीक्षा

हाल के वर्षों में रूस भारत के लिए ऊर्जा का एक प्रमुख स्रोत बनकर उभरा है। यदि खाड़ी क्षेत्र में तनाव बढ़ता है, तो भारतीय रिफाइनरियों का झुकाव मास्को की ओर और बढ़ेगा। लेकिन यह कदम भारत के लिए एक और कूटनीतिक अग्नि-परीक्षा होगा। पश्चिमी देशों के साथ अपनी सामरिक साझेदारी को बचाते हुए रूस के साथ अपनी ऊर्जा जरूरतों को पूरा करना भारत की 'रणनीतिक स्वायत्तता' की सबसे बड़ी परीक्षा है।

घरेलू राजनीति: नैतिकता बनाम यथार्थवाद

इस संकट ने भारत के भीतर एक वैचारिक बहस को भी जन्म दिया है। विपक्ष ने अंतरराष्ट्रीय कानून और संप्रभुता के उल्लंघन पर सरकार की 'चुप्पी' पर सवाल उठाए हैं। यह बहस इस बुनियादी सवाल पर टिकी है कि क्या भारत की विदेश नीति ऐतिहासिक 'गुटनिरपेक्ष' नैतिकता पर आधारित होनी चाहिए, या इसे केवल कठोर 'राष्ट्रीय हितों' तक सीमित रहना चाहिए।

बहु-कोणीय कूटनीति की चुनौतियां

पिछले एक दशक में भारत ने इजराइल के साथ रक्षा सहयोग गहरा किया है, जबकि ईरान चाबहार पोर्ट जैसी महत्वपूर्ण परियोजनाओं के लिए भारत का अहम साझीदार है। दूसरी ओर, खाड़ी देश न केवल ऊर्जा बल्कि व्यापार और 'रेमिटेंस' (धन प्रेषण) के लिए अनिवार्य हैं। जब ये सभी पक्ष सीधे युद्ध में उलझे हों, तो भारत के लिए 'बहु-कोणीय कूटनीति' बनाए रखना लगभग असंभव हो जाता है। भारत अब तक किसी एक पक्ष को चुनने से बचता रहा है, लेकिन युद्ध की लंबी छाया उसे इस फैसले के लिए मजबूर कर सकती है।

90 लाख प्रवासियों की सुरक्षा: एक असंभव चुनौती

भारत के लिए सबसे संवेदनशील मुद्दा खाड़ी देशों में रहने वाले 90 लाख भारतीय प्रवासी हैं। ये लोग न केवल वहां कार्यबल का बड़ा हिस्सा हैं, बल्कि भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूती देने वाले डॉलर भी भेजते हैं। युद्ध की स्थिति में इतनी बड़ी आबादी को वहां से निकालना रसद और प्रबंधन की दृष्टि से पूरी तरह असंभव होगा। यह संकट भारत के लिए एक ऐसी मानवीय आपदा खड़ी कर सकता है जिसका सामना करने की क्षमता फिलहाल किसी भी तंत्र के पास नहीं है।

व्यवहारिकता की जीत?

2026 में फारस की खाड़ी का यह संकट भारत के लिए कोई मामूली मुद्दा नहीं है; यह इसकी आर्थिक और सामरिक शक्ति का निर्णायक परीक्षण है। भारत की प्रतिक्रिया अब तक नैतिकता के बजाय ऊर्जा सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता की व्यवहारिक प्राथमिकताओं पर केंद्रित रही है।

अंततः, भारत का रास्ता तीन अनिवार्यताओं पर टिका है: घरेलू आर्थिक झटकों को रोकना, प्रवासियों की सुरक्षा करना और कूटनीतिक लचीलापन बनाए रखना। क्या भारत अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' को बचा पाएगा या उसे किसी नए गठबंधन का हिस्सा बनना पड़ेगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि खाड़ी की आग कितनी दूर तक फैलती है।

लोबिटो कॉरिडोर नया ब्रह्मास्त्र

वीर पुरी

अफ्रीका के खनिज गलियारे तेजी से अमेरिका-चीन प्रतिद्वंद्विता की नई अग्रिम पंक्ति बनते जा रहे हैं। बीजिंग के प्रभुत्व को संतुलित करने के लिए वाशिंगटन लोबिटो कॉरिडोर का समर्थन कर रहा है, जिससे महत्वपूर्ण खनिज आपूर्ति शृंखलाओं पर एक नई भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा आकार ले रही है।

इतिहास खुद को दोहराता नहीं है, बल्कि वह नए और अधिक परिष्कृत रूप धरकर वापस आता है। 19वीं सदी के अंत में जब यूरोपीय ताकतों ने नक्शे पर लकीरें खींचकर अफ्रीका को आपस में बांटा था, तो उनका मक़सद सोना, रबर और गुलाम हासिल करना था। आज, 21वीं सदी के तीसरे दशक में, अफ्रीका एक बार फिर महाशक्तियों की एक नई और खौफनाक बंदरबांट का अखाड़ा बन चुका है। लेकिन इस बार लड़ाई सोने या तेल के लिए नहीं है; इस बार युद्ध उन खनिजों के लिए है जो भविष्य की 'ग्रीन एनर्जी' (हरित ऊर्जा), इलेक्ट्रिक वाहनों और अत्याधुनिक रक्षा प्रणालियों की रीढ़ हैं।

दिसंबर 2025 में, संयुक्त राज्य अमेरिका ने डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो (डीआरसी) के साथ एक ऐतिहासिक और

आक्रामक 'रणनीतिक साझेदारी समझौते' पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते के तहत एक 'स्ट्रैटेजिक एसेट रिज़र्व' (एसएआर) की स्थापना की गई, जिसने अमेरिका और डीआरसी के संयुक्त विकास के लिए प्राथमिकता वाले खनन क्षेत्रों को चिन्हित कर दिया है। सतह पर यह एक सामान्य द्विपक्षीय व्यापारिक समझौता लग सकता है, लेकिन भू-राजनीति की बिसात पर यह वाशिंगटन द्वारा बीजिंग को दी गई एक सीधी और निर्मम चुनौती है। इस ढांचे के तहत, अमेरिकी कंपनियों को कांगो की खदानों में तरजीही (प्रेफरेंशियल) व्यवहार मिलेगा। यह सीधा तौर पर उस चीन के खिलाफ अमेरिका की युद्धघोषणा है, जिसका आज की तारीख में कांगो की तांबे और कोबाल्ट खदानों के 72 प्रतिशत से अधिक हिस्से पर एकछत्र एकाधिकार है।

लोबिटो कॉरिडोर: वाशिंगटन का 'लॉजिस्टिक' ब्रह्मास्त्र

अफ्रीका में बुनियादी ढांचे (इंफ्रास्ट्रक्चर) का जो भारी अभाव है, उसने इस महाद्वीप को महाशक्तियों की रणनीतिक प्रतिस्पर्धा का सबसे बड़ा थिएटर बना दिया है। आज दुनिया में सामरिक शक्ति का असली पैमाना यह नहीं है कि आपके पास कितने विमानवाहक पोत हैं, बल्कि यह है कि क्रिटिकल मिनरल्स (महत्वपूर्ण खनिजों) की आपूर्ति श्रृंखला पर आपका कितना नियंत्रण है।

इस प्रतिस्पर्धा का सबसे ज्वलंत और दृश्यमान प्रतीक 'लोबिटो कॉरिडोर' है। यह एक विशाल लॉजिस्टिक नेटवर्क है जो अंगोला के अटलांटिक तट से शुरू होकर, डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो के घने जंगलों को चीरता हुआ, जाम्बिया की खनिज-संपन्न 'कॉपरबेल्ट' (तांबा पेटी) तक जाता है। ट्रंप प्रशासन के तहत, अमेरिका ने इस परियोजना में अपनी वित्तीय प्रतिबद्धता को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया है। अमेरिका की 'डेवलपमेंट फाइनेंस कॉर्पोरेशन' (डीएफसी) के ज़रिए इस कॉरिडोर में झोंके जा रहे अरबों डॉलर इस बात का स्पष्ट संकेत हैं कि खनिज आपूर्ति श्रृंखला की सुरक्षा अब वाशिंगटन के लिए इस महाद्वीप पर सर्वोच्च रणनीतिक प्राथमिकता बन चुकी है।

दिसंबर 2025 में, डीएफसी के सीईओ बेन ब्लैक ने 'लोबिटो अटलांटिक रेलवे' को 55 करोड़ डॉलर (550 मिलियन डॉलर) का भारी-भरकम ऋण मंज़ूर किया। यह कदम तब उठाया गया जब अमेरिका अपनी विदेशी सहायता की कड़ी समीक्षा कर रहा था। अमेरिकी कांग्रेस द्वारा डीएफसी की वित्तीय क्षमता को बढ़ाकर 140 अरब डॉलर करने की मंज़ूरी के बाद, अफ्रीका अब इस एजेंसी का दूसरा सबसे बड़ा पोर्टफोलियो बन गया है, जहां 10 अरब डॉलर से अधिक का निवेश किया जा चुका है।

वाशिंगटन का रणनीतिक तर्क बिल्कुल शीशे की तरह

साफ है: बुनियादी ढांचे के वित्तपोषण का असली मक़सद दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका में चीनी एकाधिकार वाले खनिज निर्यात मार्गों को 'आज़ाद' कराना है। चीन जहां पूरी तरह से अपने 'स्टेट-ड्रिवेन' (सरकार द्वारा संचालित) बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) के ज़रिए पैसा लगाता है, वहीं डीएफसी की रणनीति निजी क्षेत्र की भागीदारी वाले 'बैंकेबल' (मुनाफा देने वाले) प्रोजेक्ट्स को प्राथमिकता देती है। अमेरिका का यह 'निवेश-संचालित' दृष्टिकोण दुनिया को यह दिखाना चाहता है कि चीनी कर्ज़ के जाल में फंसे बिना भी बड़े पैमाने पर पारदर्शी और आर्थिक रूप से व्यवहार्य बुनियादी ढांचा खड़ा किया जा सकता है।

'ग्रीन एनर्जी' का छलावा और चीन की खौफनाक मोनोपॉली

अमेरिका की इस अचानक जागी 'अफ्रीका-प्रेम' की भावना के पीछे कोई मानवीय सरोकार नहीं, बल्कि एक गहरा खौफ है। आज की दुनिया स्वच्छ ऊर्जा, उन्नत रक्षा तकनीक और इलेक्ट्रिक वाहनों की ओर तेज़ी से बढ़ रही है। और चीन ने इन सभी के लिए आवश्यक खनिजों के प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग) और निर्यात पर एक ऐसा लौह-शिकंजा कस रखा है, जो वाशिंगटन की रातों की नींद उड़ाने के लिए काफी है। आंकड़े खौफनाक हैं। आज की तारीख में, चीन दुनिया की 95 प्रतिशत 'रेयर-अर्थ' (दुर्लभ मृदा) रिफाइनिंग, बैटरी के लिए 90 प्रतिशत ग्रेफाइट प्रोसेसिंग और 70 प्रतिशत लिथियम प्रोसेसिंग को नियंत्रित करता है। यह विशाल प्रसंस्करण क्षमता बीजिंग को एक ऐसा स्थायी और अजेय लाभ (लिवरेज) देती है, जिससे वह ग्रीन टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में वैश्विक आपूर्ति और कीमतों को अपनी मर्जी से नियंत्रित कर सकता है। जब चाहे सप्लाई रोक सकता है, जब चाहे बाज़ार को डंप कर सकता है।

अफ्रीका की धरती के नीचे इन खनिजों का अथाह भंडार है। लेकिन समस्या यह है कि अफ्रीका में मौजूद मौजूदा बुनियादी ढांचा और लॉजिस्टिक्स नेटवर्क पूरी तरह से चीन के नियंत्रण में हैं। अफ्रीका की खदानों से निकला खनिज सीधे चीनी बंदरगाहों और वहां से चीनी फैक्ट्रियों तक पहुंचता है। लोबिटो कॉरिडोर में वाशिंगटन का निवेश महज़ एक रेलवे लाइन बिछाना नहीं है; यह चीन के इस वैश्विक एकाधिकार को तोड़ने की एक व्यापक रणनीतिक दृष्टि का हिस्सा है। जून 2025 में अमेरिका की मध्यस्थता में हुआ डीआरसी-रवांडा शांति समझौता और अमेरिका-यूक्रेन क्रिटिकल मिनरल्स एग्रीमेंट—ये सभी इसी एक बड़ी पज़ल (पहेली) के अलग-अलग टुकड़े हैं।

'पार्टनरशिप' का खोखलापन और अमेरिकी कूटनीति का पाखंड

हालांकि, अमेरिका द्वारा इस रणनीतिक प्राथमिकता को जिस तरह से लागू किया जा रहा है, वह उसकी विश्वसनीयता पर गंभीर सवाल खड़े करता है। एक तरफ अमेरिका खुद को अफ्रीका के 'सच्चे विकास भागीदार' के रूप में पेश कर रहा है, लेकिन दूसरी तरफ उसके कदम उसकी नीयत की पोल खोल रहे हैं।

जनवरी 2025 में ट्रंप प्रशासन द्वारा की गई 90-दिवसीय विदेशी सहायता समीक्षा के परिणामस्वरूप, अफ्रीका पर केंद्रित अमेरिकी सहायता में 20 प्रतिशत की भारी कटौती कर दी गई। इसमें 'यूएसएड' के वे मानवीय और विकासात्मक कार्यक्रम भी शामिल थे जो सीधे तौर पर अफ्रीका के आम लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए चलाए जा रहे थे। यह एक बेहद विरोधाभासी और क्रूर यथार्थ है: एक ओर अमेरिका अफ्रीका के लोगों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज कल्याण के बजट में कैंची चला रहा है, और दूसरी ओर उसी महाद्वीप की ज़मीन से खनिज निकालने के लिए डीएफसी के ज़रिए रेलवे लाइनों और बंदरगाहों में अरबों डॉलर उड़ेल रहा है।

इस कटौती से यह बात पूरी तरह नंगी हो जाती है कि प्रशासन की सर्वोच्च और एकमात्र प्राथमिकता केवल और केवल 'खनिज सुरक्षा' है। अमेरिका का यह रवैया उसे एक 'विश्वसनीय विकल्प' के रूप में स्थापित करने के बजाय, उसे 19वीं सदी के उन शोषकों की कतार में खड़ा कर देता है जो केवल संपदा लूटने आते थे। चीन की रणनीति—भले ही वह कितनी भी आक्रामक क्यों न हो—बुनियादी ढांचे, विकास सहायता और उपभोक्ता निवेश का एक समग्र (होलिस्टिक) पैकेज पेश करती है। खनिजों के इर्द-गिर्द सिमटी अमेरिका की यह नई नीति उसकी विश्वसनीयता को खोखला कर रही है। कथनी और करनी का यह अंतर साफ बता रहा है कि अमेरिका अफ्रीका का 'सतत विकास भागीदार' नहीं, बल्कि चीन की ही तरह एक 'विशुद्ध शोषक प्रतिस्पर्धी' (एक्सट्रैक्टिव कॉम्पिटिटर) है।

ड्रैगन का पलटवार

अमेरिका लोबिटो कॉरिडोर को बीआरआई के एक 'विकासवादी विकल्प' के रूप में दुनिया के सामने पेश कर रहा है। लेकिन बीजिंग के नीति-निर्माता इसे अलग नज़रिए से देखते हैं। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की नज़र में, यह अफ्रीका के बुनियादी ढांचे से चीनी कंपनियों को खदेड़ने की एक सोची-समझी अमेरिकी साज़िश है। और ड्रैगन शांत बैठने वालों में से नहीं है।

वीर पुरी ऑब्ज़र्वर रिसर्च फ़ाउंडेशन के सेंटर फ़ॉर न्यू इकोनॉमिक डिप्लोमेसी में रिसर्च असिस्टेंट हैं।

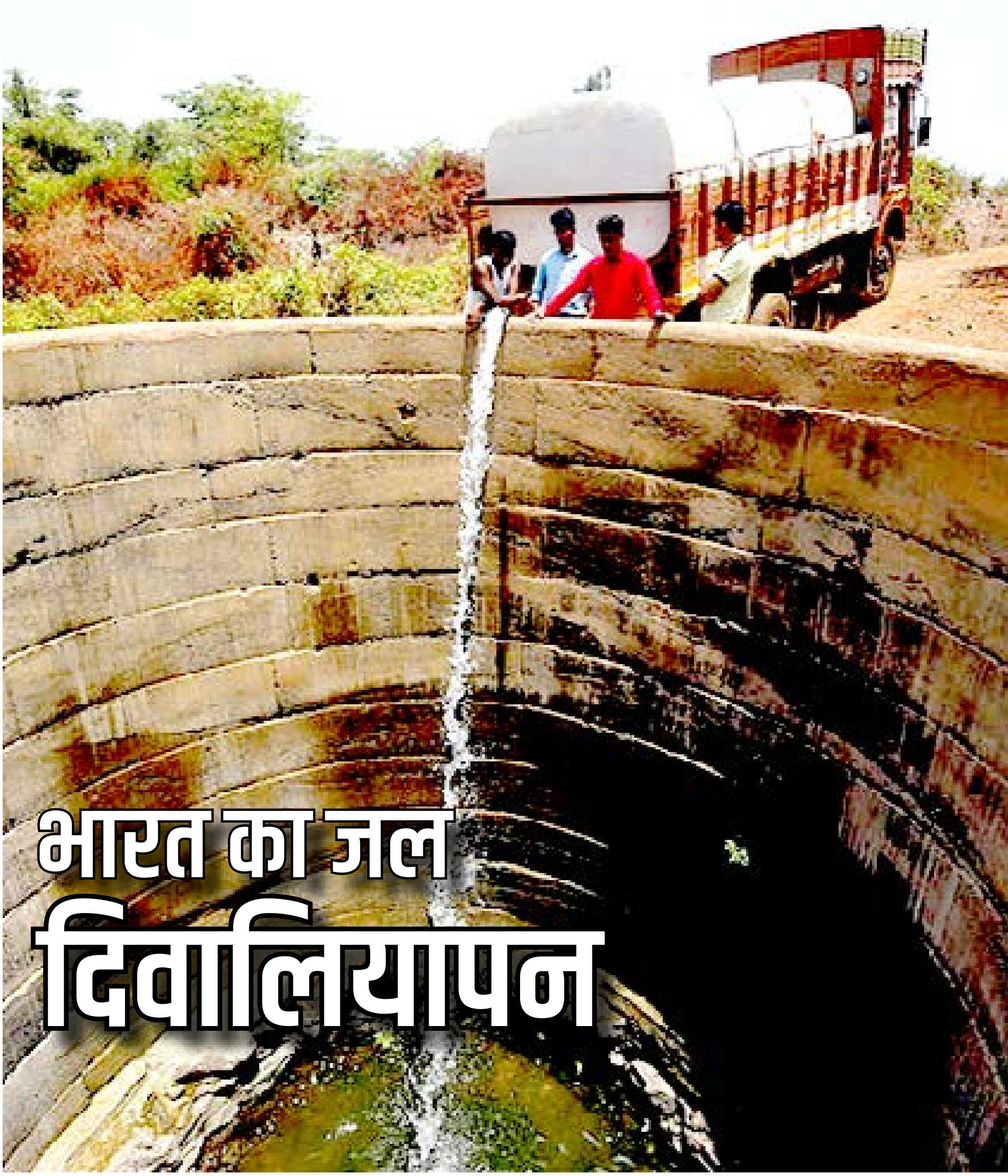

भारत का जल दिवालियापन

जलवायु परिवर्तन और दशकों से चले आ रहे अत्यधिक दोहन ने दुनिया को एक नए जल-वैज्ञानिक यथार्थ—'जल दिवालियापन'—की ओर धकेल दिया है। भारत जैसे देश के लिए, जहाँ भूजल आजीविका और शहरों दोनों को सहारा देता है, यह मंडराता संकट आर्थिक स्थिरता और मानव सुरक्षा, दोनों के लिए गंभीर खतरा बनता जा रहा है।

धवल देसाई

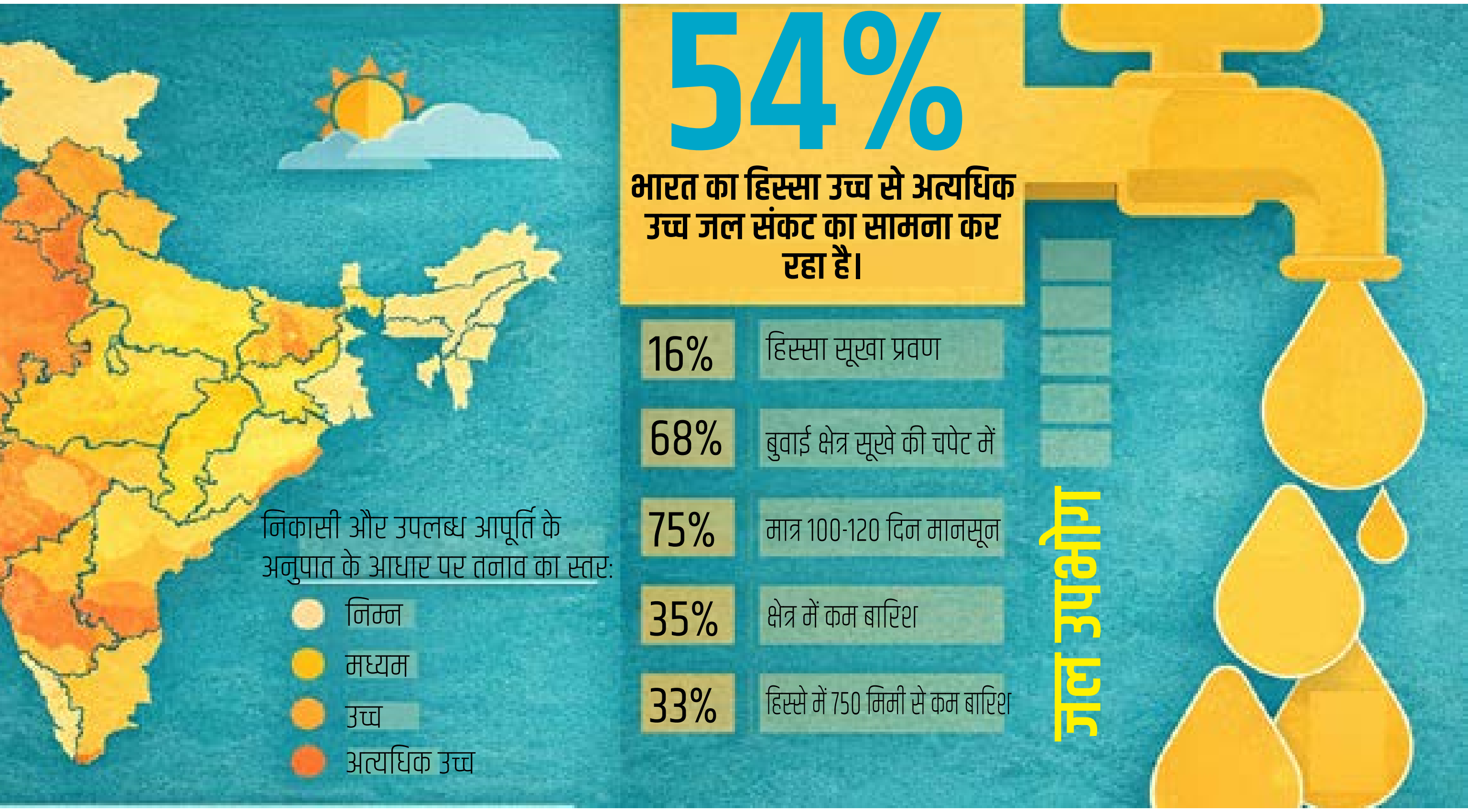

जलवायु परिवर्तन की विभीषिका और दशकों से चले आ रहे निर्मम दोहन ने आज दुनिया को एक ऐसे खौफनाक और नए हाइड्रोलॉजिकल (जल-विज्ञान) यथार्थ के मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया है, जिसे वैज्ञानिक अब 'जल दिवालियापन' (वाटर बैंकरप्सी) कह रहे हैं। भारत जैसे देश के लिए, जहां भूजल (जमीन के नीचे का पानी) करोड़ों लोगों की आजीविका से लेकर महानगरों के अस्तित्व तक को पालता है, यह मंडराता हुआ संकट केवल प्यास बुझाने की चुनौती नहीं है। यह देश की आर्थिक स्थिरता, खाद्य सुरक्षा और मानव अस्तित्व के लिए एक ऐसा सीधा खतरा है, जो किसी भी बाहरी युद्ध या आर्थिक मंदी से कहीं अधिक विनाशकारी साबित होने वाला है।

दशकों तक दुनिया भर के नीति-निर्माता जल संकट को केवल एक प्राकृतिक संसाधन के प्रबंधन के नज़रिए से देखते रहे हैं। लेकिन अब वक्त बदल चुका है। अब बात सदियों से पानी के क्रूर दुरुपयोग के कारण पैदा हुई उन प्रणालीगत और ढांचागत कमज़ोरियों से तत्काल निपटने की है, जिन्हें हम अब तक नज़रअंदाज़ करते आए हैं। विडंबना यह है कि अब तक हम पानी की समस्या को समझने के लिए जिन शब्दों का इस्तेमाल करते थे—जैसे 'जल की कमी' (वाटर स्कार्सिटी), 'जल तनाव' (वाटर स्ट्रेस), या 'जल संकट' (वाटर क्राइसिस)—वे शब्द आज की वैश्विक जल आपदा की गंभीरता को बयां करने के लिए पूरी तरह से अपर्याप्त और बौने साबित हो चुके हैं।

'जल दिवालियापन': कमी और संकट से परे एक अपरिवर्तनीय त्रासदी

संयुक्त राष्ट्र विश्वविद्यालय के जल, पर्यावरण और स्वास्थ्य संस्थान (यूएनयू-आईएनडब्ल्यूईएच) के नवीनतम और बेहद चौंकाने वाले अध्ययन ने वैश्विक जल गतिकी के इन नए और खौफनाक रुझानों को परिभाषित करने के लिए 'जल दिवालियापन' शब्द गढ़ा है। यह अध्ययन, जिसका शीर्षक 'ग्लोबल वाटर बैंकरप्सीः लिविंग बियॉन्ड आवर हाइड्रोलॉजिकल मीन्स इन द पोस्ट-क्राइसिस एरा' है, इस दिवालियापन को एक ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित करता है जहां जल पारिस्थितिकी तंत्र की प्राकृतिक रिकवरी (वापस उबरने की क्षमता) लगभग स्थायी रूप से नष्ट हो चुकी है। इसका सीधा कारण यह है कि इंसान ने पानी का इतना दोहन कर लिया है जो उसकी नवीकरणीय (रिन्यूएबल) क्षमता से कहीं अधिक है।

यह नया विश्लेषणात्मक ढांचा भारत के लिए बेहद गंभीर और दूरगामी निहितार्थ रखता है। भारत पहले से ही लगातार बढ़ते जल घाटे और जल प्रशासन की बेहद जटिल और भ्रष्ट चुनौतियों से जूझ रहा है।

इस अवधारणा को गहराई से समझने के लिए हमें पुराने शब्दों और इस नए शब्द के बीच का फर्क समझना होगा। अध्ययन के अनुसार, 'जल तनाव' वह स्थिति है जहां मांग उपलब्ध पानी से अधिक हो जाती है, लेकिन इसका प्रभाव प्रतिवर्ती (रिवर्सिबल) होता है, यानी बारिश होने पर स्थिति सुधर सकती है। वहीं, 'जल संकट' मुख्य रूप से सूखे या बुनियादी ढांचे की विफलता के कारण होने वाली एक अस्थायी कमी है, जिसे आपातकालीन उपायों से संभाला जा सकता है। लेकिन 'जल दिवालियापन' संकट के बाद की वह स्थायी और भयानक स्थिति है, जहां पानी का उपयोग लगातार प्राकृतिक रूप से वापस आने वाले ताज़े पानी की मात्रा को पार कर जाता है, और धरती के प्राकृतिक जल भंडारों के सुरक्षित स्तर पूरी तरह से खोखले हो जाते हैं।

कुदरत के 'चालू खाते' और 'बचत खाते' की निर्मम लूट

इस दिवालियापन को समझने के लिए कुदरत के अर्थशास्त्र को समझना होगा। यह प्राकृतिक संसाधन के 'चेकिंग अकाउंट' (चालू खाते) और 'सेविंग अकाउंट' (बचत खाते) दोनों की गंभीर कमी का परिणाम है।

चालू खाते का अर्थ है नदियों, आर्द्रभूमियों (वेटलैंड्स) और सतही जलाशयों का वह पानी जो बारिश के साथ प्राकृतिक रूप से भरता रहता है। चूंकि प्राकृतिक जल स्रोतों का पुनर्भरण (रिचार्ज) मौसम पर निर्भर करता है, इसलिए सूखे या अधिक बारिश वाले वर्षों में इस चालू खाते में भारी उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है।

इसके विपरीत, बचत खाते का सीधा अर्थ है ज़मीन के नीचे का पानी (भूजल), मिट्टी की नमी, ग्लेशियर और गहरी जलभृत (एक्विफर)। कुदरत के इस बचत खाते को भरने में दशकों से लेकर सहस्राब्दियों (हज़ारों साल) तक का समय लगता है। जब हम अपनी रोज़मर्रा की प्यास बुझाने या फसलें उगाने के लिए इस बचत खाते को खाली करने लगते हैं, तो इसके सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय परिणाम इतने विनाशकारी होते हैं कि कोई भी देश उनकी भरपाई नहीं कर सकता।

जब नदियां (चालू खाता) और भूजल (बचत खाता) दोनों एक साथ सूखने लगें, तो यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि दुनिया जल दिवालियापन की गर्त में गिर चुकी है। संयुक्त राष्ट्र के अध्ययन ने चेतावनी दी है कि लगातार और बार-बार सूखे का आना—जो पहले कभी-कभार ही होता था—जल दिवालियापन का सबसे स्पष्ट लक्षण है। यह बताता है कि ज़मीन के नीचे पानी का स्तर इतना गिर चुका है कि अब उसका वापस अपने पुराने स्तर पर आना लगभग असंभव हो गया है।

अध्ययन मांग करता है कि दुनिया अपने पुराने और प्रतिक्रियात्मक (घुटने के बल बैठकर किए जाने वाले आपातकालीन) उपायों को छोड़े और एक पारदर्शी जल लेखांकन (वाटर अकाउंटिंग) अपनाए। हमें यह तय करना होगा कि हम ज़मीन से कितना पानी निकाल सकते हैं, और प्राकृतिक जल उत्पादन को बचाने को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता बनाना होगा।

वैश्विक स्तर पर जल दिवालियापन के प्रमाण डरावने हैं। दुनिया भर के 70 प्रतिशत गहरे जलभृत (एक्विफर) लगातार सूख रहे हैं। आज वैश्विक घरेलू आपूर्ति का 50 प्रतिशत और सिंचाई का 40 प्रतिशत हिस्सा भूजल पर निर्भर है। अगर यह भूजल सूख गया, तो दुनिया एक ऐसे भयानक जल-असुरक्षा के युग में प्रवेश करेगी जहां पानी के लिए देशों और राज्यों के बीच खूनी युद्ध होंगे। आज भी, दुनिया की करीब 4 अरब आबादी साल में कम से कम एक महीने गंभीर जल संकट का सामना करती है, और वैश्विक आबादी का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा उन देशों में रहता है जो जल-असुरक्षित हैं।

1990 के दशक के बाद से दुनिया भर की आधी से अधिक बड़ी मीठे पानी की झीलें लगातार सिकुड़ रही हैं। कई नदियां अब समुद्र तक पहुंच ही नहीं पातीं, जो इस बात का प्रमाण है कि धरती का हाइड्रोलॉजिकल चक्र बुरी तरह टूट चुका है।

भारत की त्रासदी: अपनी ही कब्र खोदता एक मुल्क

एक जल-दिवालिया दुनिया के भारत के लिए असाधारण रूप से गंभीर मायने हैं। भारत दुनिया में भूजल का सबसे बड़ा दोहन करने वाला देश है। हमारी बढ़ती आबादी की मांग और जल स्रोतों के असमान वितरण ने हमें एक टाइम-बम पर बैठा दिया है।

आंकड़ों पर गौर करें: भारत की अनुमानित वार्षिक भूजल पुनर्भरण (रिचार्ज) क्षमता 448.52 बिलियन क्यूबिक मीटर (बीसीएम) है, जिसमें से निकालने योग्य मात्रा लगभग 407.75 बीसीएम है। लेकिन आज की तारीख में भारत हर साल लगभग 247.22 बीसीएम पानी ज़मीन से खींच रहा है। यह राष्ट्रीय निकासी सीमा के 60 प्रतिशत से अधिक है।

भारत की 62 प्रतिशत सिंचाई और 85 प्रतिशत तक घरेलू जल आपूर्ति पूरी तरह से ज़मीन के नीचे के पानी पर निर्भर है। यही भूजल हमारी खाद्य और पेयजल सुरक्षा की रीढ़ है। लेकिन इसी भूजल पर हमारी अंधी निर्भरता आज पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और भारत-

गंगा के मैदानी इलाकों के कुछ हिस्सों को 'अपरिवर्तनीय अति-दोहन' (इररिवर्सिबल ओवरएक्सप्लॉयटेशन) की ओर धकेल रही है। दूसरे शब्दों में, इन राज्यों ने अपना हाइड्रोलॉजिकल भविष्य गिरवी रख दिया है और अब उनके पास दिवालिया होने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा है।

कंक्रीट के जंगल और 'डे ज़ीरो' का खौफनाक

भारत के शहरी जल तंत्र की स्थिति तो और भी भयावह है। शहरों में बढ़ती मांग और घटती आपूर्ति के बीच की खाई लगातार चौड़ी हो रही है। 2019 में चेन्नई ने जो 'डे ज़ीरो' (वह दिन जब शहर के सभी नल सूख गए थे) का खौफनाक मंज़र देखा था, वह महज़ एक ट्रेलर था। आज हमारे शहरों में बेतहाशा और बिना किसी नियम-कानून के खोदे जा रहे बोरवेल इस बात का प्रमाण हैं कि हम संधारणीय (सस्टेनेबल) सीमाओं को पार कर चुके हैं।

नीति आयोग के 2019 के समग्र जल प्रबंधन सूचकांक के अनुसार, 2030 तक शहरी भारत में पानी की मांग और आपूर्ति के बीच का अंतर 50 बीसीएम तक पहुंचने का अनुमान है। आज की तारीख में भारत के पांच प्रमुख शहर—दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, बेंगलुरु और हैदराबाद—दुनिया के 20 सबसे अधिक जल-तनाव वाले शहरों की सूची में शामिल हैं। यह स्थिति केवल प्यास का संकट नहीं है, बल्कि यह एक विशाल सार्वजनिक स्वास्थ्य आपदा है। आज देश के 14 वर्ष से कम उम्र के 80 लाख बच्चे खराब पानी की गुणवत्ता के कारण गंभीर बीमारियों के जोखिम में जी रहे हैं।

हरित क्रांति का काला साया और कृषि की अंधी प्यास

इस जल दिवालियापन के पीछे सबसे बड़ा अपराधी हमारी कृषि नीतियां हैं। भारत में ताज़े पानी की कुल निकासी का लगभग 87 प्रतिशत हिस्सा केवल खेती में झोंक दिया जाता है। 1960 के दशक के मध्य में हरित क्रांति के नाम पर भारत ने जो नीतियां अपनाईं, उन्होंने देश को भुखमरी से तो बचा लिया, लेकिन देश के हाइड्रोलॉजिकल चक्र की हत्या कर दी।

सब्सिडी और न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के लालच में पानी पीने वाली भारी फसलों—विशेष रूप से धान (चावल) और गेहूं—को अंधाधुंध बढ़ावा दिया गया। इसके परिणामस्वरूप पंजाब और हरियाणा जैसे अर्ध-शुष्क राज्यों में, जो भारत की खाद्य सुरक्षा और निर्यात के केंद्र हैं, किसानों ने धान उगाने के लिए ज़मीन का सीना छलनी कर दिया। यह एमएसपी द्वारा प्रायोजित एक पारिस्थितिक आत्महत्या है, जिसने इन राज्यों के भूजल को पाताल तक पहुंचा दिया है।

दिवालियापन से बचने के अचूक अस्त्र

संयुक्त राष्ट्र का यह अध्ययन वैश्विक जल दिवालियापन से निपटने के लिए व्यापक कानूनी, संस्थागत और नीतिगत बदलावों की मांग करता है। संकट के बाद के जल प्रबंधन के लिए यह अनिवार्य है कि भूजल निकालने पर सख्त और स्पष्ट सीमाएं लगाई जाएं, और प्राकृतिक जल प्रणालियों को पुनर्जीवित करने के लिए निवेश किया जाए। भारत को इन चेतावनियों को अपनी जलवायु, खाद्य और जैव विविधता नीतियों के केंद्र में रखना ही होगा। जल प्रशासन को तुरंत कैलिब्रेट (सुधारने) करने के लिए भारत को तीन बड़े और कठोर कदम उठाने होंगे:

पहला: 'श्रीअन्न' (मोटे अनाज) की कूटनीति और एमएसपी का कायाकल्प

भारत को धान और गेहूं जैसी जल-भक्षी फसलों से अपना मोहभंग करना होगा। हमें अपनी फसल प्रणाली में व्यापक बदलाव करते हुए सदियों से भारतीयों का मुख्य भोजन रहे मोटे अनाजों (बाजरा, ज्वार, रागी आदि) की ओर लौटना होगा। जलवायु परिवर्तन, जल संकट और सूखे के इस दौर में मोटे अनाज उच्च पोषण मूल्य के साथ एक अचूक 'वन-स्टॉप सॉल्यूशन' हैं।

दूसरा: शहरों में चक्रीय जल अर्थव्यवस्था (सर्कुलर वाटर इकोनॉमी) का निर्माण

भारत को अपने शहरी जल प्रणालियों में तुरंत क्रांतिकारी सुधार करने होंगे। सौ किलोमीटर दूर से पाइपों के ज़रिए शहरों में पानी लाने की अंधी दौड़ को रोककर, हमें एक 'चक्रीय जल अर्थव्यवस्था' बनानी होगी। इसके तहत जल संचयन, अपशिष्ट जल (गंदे पानी) के पुनर्चक्रण (रीसाइक्लिंग) और लीकेज को रोकने के लिए एक एकीकृत रणनीति अपनानी होगी।

तीसरा: अटल भूजल योजना का शहरी संस्करण (एबीवाई-अर्बन)

ग्रामीण भारत में सामुदायिक भागीदारी से भूजल प्रबंधन के लिए चल रही 'अटल भूजल योजना' (एबीवाई) की तर्ज़ पर भारत को तुरंत एक 'अटल भूजल योजना-शहरी' लागू करनी चाहिए। आज हमारे शहरों में ज़मीन के नीचे पानी कितनी तेज़ी से सूख रहा है, इसे रोकने के लिए कोई समन्वित या मिशन-मोड प्रतिक्रिया नहीं है। नियम बिखरे हुए हैं और नगर निगमों के पास तकनीकी क्षमता शून्य है।

यह आलेख मूल रूप से ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के वरिष्ठ फेलो और उपाध्यक्ष धवल देसाई के लेखन के आधार पर प्रकाशित किया गया था।

क्यूआर कोड का तिलिस्म

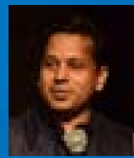

संतोष कुमार

एक टैप, एक क्यूआर कोड और भरोसे का एक क्षण—इतना ही काफी है सब कुछ खो देने के लिए। भारत की डिजिटल भुगतान क्रांति के पीछे धोखाधड़ी की एक खामोश महामारी छिपी है, जहां सुविधा ने सतर्कता को पीछे छोड़ दिया है और तकनीक मानवीय जागरूकता से कहीं आगे निकल गई है।

भारत के किसी भी कोने में चले जाइए—नुक्कड़ की चाय की टपरी हो, सब्ज़ी का ठेला हो या आलीशान मॉल—एक यांत्रिक आवाज़ हर जगह गूंजती है: 'पेटीएम पर 50 रुपये प्राप्त हुए।' यह आवाज़ 21वीं सदी के 'डिजिटल इंडिया' का सबसे बड़ा विजय-घोष मानी जाती है। एक स्मार्टफोन, एक क्यूआर कोड और एक 'टैप' ने भारतीय अर्थव्यवस्था को कागजी मुद्रा की सुस्ती से निकालकर डिजिटल गतिशीलता के राजमार्ग पर खड़ा कर दिया है। लेकिन कल्ट करंट के वैचारिक चश्मे से देखें तो इस चकाचौंध के पीछे एक खौफनाक 'सराब' (भ्रम) आकार ले रहा है। यह सुविधा जितनी बड़ी है, इसके पीछे छिपी डिजिटल डकैती की महामारी उतनी ही सर्द है।

सुविधा का भस्मासुर और मनोवैज्ञानिक खौफ

भारत के उभरते मध्यवर्ग के लिए अब सबसे बड़ा डर 'लेन-देन की विफलता' नहीं, बल्कि 'अदृश्य चोरी' है। दशकों तक भारतीय समाज का पैसे के साथ एक भौतिक और भावनात्मक रिश्ता रहा है—तिजोरी की चाबी, चावल के डिब्बों में छिपी नकदी और गद्दे के नीचे दबाए गए नोट सुरक्षा का एक अहसास देते थे। लेकिन जब से पैसा भौतिक से अमूर्त (डिजिटल) अंकों में बदला है, सुरक्षा का वह स्पर्श भी छिन गया है।

अब पैसा केवल स्क्रीन पर चमकते कुछ अंक हैं, जिन्हें एक गलत क्लिक शून्य में बदल सकता है। तकनीक ने यहाँ एक 'भस्मासुर' का रूप ले लिया है—जिस सुविधा को हमने अपने कल्याण के लिए बनाया था, वही अब हमारे सिर पर हाथ रखने को आतुर है। साइबर ठगों को अब किसी का ताला तोड़ने या बंदूक दिखाने की ज़रूरत नहीं; वे आपके ही अंगूठे से आपकी तिजोरी लुटवा लेते हैं।

22,842 करोड़ की अदृश्य डकैती: एक राष्ट्रीय त्रासदी

जब आंकड़े सरकारी फाइलों में होते हैं, तो वे निर्जीव लगते हैं। लेकिन जब वे किसी पेंशनभोगी की जीवनभर की जमा-पूंजी होते हैं, तो वे एक ऐसी त्रासदी बन जाते हैं जिसका कोई मातम भी नहीं मना पाता। आरबीआई (RBI) की रिपोर्ट के अनुसार, 2024 में साइबर अपराधियों ने भारतीयों को 22,842 करोड़ रुपये का चूना लगाया है। यह महज एक आर्थिक नुकसान नहीं, बल्कि एक 'साइबर-महामारी' है।

विडंबना यह है कि हर पांच में से एक भारतीय ने यूपीआई धोखाधड़ी का सामना किया है, लेकिन आधे से अधिक पीड़ित कभी रिपोर्ट दर्ज नहीं कराते। इसके पीछे 'सामाजिक शर्म' का एक गहरा मनोविज्ञान काम करता है। समाज में 'मूर्ख' कहलाने का डर पीड़ितों को खामोश कर देता है, और यही खामोशी अपराधियों के लिए ऑक्सीजन का काम करती है।

सोशल इंजीनियरिंग: जब कंप्यूटर नहीं, 'इंसानी दिमाग' हैक होता है

डिजिटल अपराधों को लेकर एक आम गलतफहमी यह है कि

हैकर किसी अंधेरे कमरे में बैठकर जटिल कोड तोड़ते हैं। सच इसके विपरीत है। आज का असली खतरा 'सिस्टम' के भीतर नहीं, बल्कि 'मानवीय व्यवहार' के भीतर है। इसे तकनीकी भाषा में 'सोशल इंजीनियरिंग' कहा जाता है।

जामताड़ा या मेवात के ठगों को कोडिंग सीखने की ज़रूरत नहीं; वे इंसानी मनोविज्ञान के डॉक्टर हैं। वे जानते हैं कि डर और लालच के क्षणों में मनुष्य की तार्किक क्षमता (Critical Thinking) शून्य हो जाती है। बिजली कटने का डर, केवाईसी अपडेट की धमकी या लॉटरी का लालच—ये सब केवल 'हुक' हैं। 'डीपफेक' तकनीक ने अब इसे और भयावह बना दिया है, जहाँ आपके किसी प्रियजन की आवाज़ या वीडियो का इस्तेमाल कर आपसे पैसे ठगे जाते हैं। यह तकनीक का वह चेहरा है जहाँ सत्य और आभास के बीच की रेखा मिट चुकी है।

डिजिटल हाशिए के शिकार और जवाबदेही का अभाव

इस व्यवस्था ने एक ऐसी आबादी को डिजिटल सिस्टम में धकेल दिया है जिनकी तकनीकी समझ शून्य है। हमारे बुज़ुर्ग और ग्रामीण व्यापारी इस 'डिजिटल सुनामी' के सबसे आसान शिकार हैं। उनके लिए मोबाइल आज भी सिर्फ बातचीत का यंत्र है, बैंक का काउंटर नहीं। डिजिटल ऐप्स का 'यूज़र इंटरफेस' जितना सरल बनाया गया है, उसने खतरे को भांपने की हमारी सहज वृत्ति को उतना ही कुंद कर दिया है।

सबसे बड़ी त्रासदी बैंकों और नियामक संस्थाओं का रवैया है। जब भी कोई धोखाधड़ी होती है, बैंक बड़ी बेशर्मी से 'उपभोक्ता की लापरवाही' का तर्क देकर पल्ला झाड़ लेते हैं। यहाँ कल्ट करंट एक बुनियादी सवाल उठाता हैः यदि यह डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर इतना ही आधुनिक है, तो सुरक्षा का पूरा बोझ उस नागरिक पर क्यों डाल दिया गया है जो तकनीक का विशेषज्ञ नहीं है? बैंकों के एल्गोरिदम उन संदिग्ध लेन-देन को क्यों नहीं पहचान पाते जो उपभोक्ता के सामान्य व्यवहार से अलग होते हैं?

कानूनी भूलभुलैया और रिकवरी का रसातल

यद्यपि 1930 जैसी हेल्पलाइन और साइबर पोर्टल सक्रिय हैं, लेकिन ठगे गए पैसों की 'रिकवरी रेट' आज भी रसातल में है। पैसा एक बार खाते से निकला नहीं कि वह पलक झपकते ही क्रिप्टो-करेंसी या 'म्यूल अकाउंट्स' (फर्जी खाते) के जाल में खो जाता है। कानून की प्रक्रिया इतनी उबाऊ और थका देने वाली है कि आम आदमी न्याय की उम्मीद ही छोड़ देता है। यह 'सत्ता की सामूहिक लाचारी' का एक उदाहरण है, जहाँ अपराधी तकनीक के हाईवे पर दौड़ रहे हैं और कानून बैलगाड़ी पर उनका पीछा कर रहा है।

संप्रभुता के उड़ रहे परखच्चे

बलूचिस्तान का रण

संतु दास

जब रावलपिंडी की रणनीतिक पकड़ ढीली पड़ने लगी है, तब बलूचिस्तान एक उपेक्षित प्रांत से बदलकर भू-राजनीतिक ज्वालामुखी बन चुका है। यह व्यवस्थागत पतन पाकिस्तान की हाइब्रिड व्यवस्था की वैचारिक हार को उजागर करता है और साबित करता है कि जब जनता का भरोसा टूट जाए, तो साम्राज्य केवल बंदूकों के बल पर कायम नहीं रह सकते।

जैसे-जैसे रावलपिंडी की सामरिक पकड़ ढीली पड़ती जा रही है, बलूचिस्तान एक उपेक्षित प्रांत से बदलकर एक भू-राजनीतिक ज्वालामुखी में तब्दील हो गया है। यह व्यवस्थागत पतन पाकिस्तान के उस 'हाइब्रिड शासन' की वैचारिक हार का प्रतीक है, जिसने सात दशकों से यह भ्रम पाल रखा था कि साम्राज्य केवल संगीनों के दम पर टिकाए जा सकते हैं। जब जनता का विश्वास खंडित हो जाता है, तो मानचित्रों पर खींची गई रेखाएं केवल 'कागजी संप्रभुता' बनकर रह जाती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में पाकिस्तान के लिए चुनौतियां केवल सैन्य नहीं रही हैं; उन्होंने 'राष्ट्र-राज्य' की उस अवधारणा पर ही एक मौलिक प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है, जिसे रावलपिंडी के जनरलों ने बंदूक की नोक पर बांध रखा था। बलूच लिबरेशन आर्मी (BLA) द्वारा पाकिस्तानी सैनिकों को बंधक बनाना और इस्लामाबाद को सात दिन का अल्टीमेटम देना कोई साधारण विद्रोही घटना नहीं है। यह उस 'सामरिक संप्रभुता' के ढहने की आवाज़ है, जिसका पाकिस्तान ने लंबे समय तक वैश्विक मंच पर अभिनय किया है। बलूचिस्तान—पाकिस्तान का सबसे अमीर लेकिन सबसे उपेक्षित प्रांत—अब उस आग के गोले में बदल चुका है जिसकी तपिश रावलपिंडी के सैन्य मुख्यालय तक पहुँच रही है।

'रद-उल-फितना' का सराब और जमीनी हकीकत

पाकिस्तानी सेना ने 'ऑपरेशन रद-उल-फितना-1' को इस दावे के साथ लॉन्च किया था कि यह प्रांत में पूर्ण शांति स्थापित कर देगा। सैन्य तंत्र ने 200 से अधिक विद्रोहियों को मार गिराने का दावा करते हुए अपनी पीठ थपथपाई। लेकिन, धरातल की हकीकत इन कागजी दावों से मीलों दूर है। हाल के महीनों में बैंकों, स्कूलों, बाजारों और सैन्य ठिकानों पर एक साथ हमले करने की BLA की क्षमता ने पाकिस्तानी सैन्य प्रतिष्ठान के सबसे सुरक्षित क्षेत्रों की सुरक्षा को तार-तार कर दिया है।

वर्ष 2025 बलूचिस्तान के इतिहास में सबसे खूनी वर्ष साबित हुआ है, जहाँ पिछले वर्ष की तुलना में हिंसा में 25 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई। विद्रोहियों ने अपनी रणनीति बदल दी है; वे अब केवल पहाड़ों में छिपे छापामार दस्तों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे बड़े पैमाने पर संगठित हमलों के माध्यम से राज्य की मशीनरी को खुली चुनौती दे रहे हैं। 'जाफर एक्सप्रेस' का अपहरण और उसके बाद चली लंबी घेराबंदी इस बात का प्रमाण है कि विद्रोही अब तकनीकी और सामरिक रूप से कहीं अधिक निपुण हो गए हैं। यह एक ऐसे राज्य की तस्वीर है जो अपने ही आंगन में अपनी पकड़ खो रहा है।

प्रतिरोध का नया सामाजिक व्याकरण

बलूच प्रतिरोध की इस लहर का सबसे चौंकाने वाला पहलू इसका सामाजिक ढांचा है। यह अब केवल पहाड़ियों में छिपे कुछ लड़ाकों का संघर्ष नहीं रह गया है। आज का शिक्षित बलूच युवा, जो कभी पाकिस्तान की मुख्यधारा में शामिल होने के सपने देखता था, पूरी तरह से उग्रवाद की ओर मुड़ गया है। व्यवस्थित उपेक्षा, आर्थिक हाशिए पर धकेलने की प्रक्रिया और राजनीतिक दमन ने एक पूरी पीढ़ी को विद्रोही बना दिया है।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बलूच महिलाओं की सक्रिय भागीदारी है। मध्यम वर्ग से आने वाली ये महिलाएं, जो कभी घरों तक सीमित थीं, अब विद्रोह की अग्रिम पंक्ति में खड़ी हैं। जिस क्रूरता के साथ सैन्य तंत्र ने शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शनों को कुचला, उसने उग्रवाद की ज़मीन को और उर्वर बना दिया। जब एक राज्य अपने नागरिकों की जायज मांगों के प्रति बहरा हो जाता है, तो प्रतिरोध का रास्ता अनिवार्य रूप से बंदूक की नली से होकर गुज़रता है। बलूचिस्तान में ठीक यही घटित हो रहा है।

खनिज संपदा और आसिम मुनीर का जुआ

पाकिस्तान के वर्तमान वास्तविक शासक, फील्ड मार्शल आसिम मुनीर, बलूचिस्तान को एक सामरिक प्यादे के रूप में देखते हैं। उनकी नज़रें प्रांत के दुर्लभ खनिज संसाधनों पर टिकी हैं। मुनीर समझते हैं कि बदलती वैश्विक व्यवस्था में इन संसाधनों का उपयोग 'भू-राजनीतिक किराए' के रूप में किया जा सकता है। वे इन खनिजों के माध्यम से संयुक्त राज्य अमेरिका से रणनीतिक और आर्थिक रियायतें हासिल करना चाहते हैं।

पिछले साल व्हाइट हाउस में डोनाल्ड ट्रंप से मुनीर ने जो वादे किए थे, वे अब उनके गले की फांस बन रहे हैं। ट्रंप का धैर्य सीमित है, और मुनीर पर परिणाम देने का भारी दबाव है। यही कारण है कि पाकिस्तानी सेना बलूचिस्तान के संसाधनों पर कब्ज़ा करने के लिए हर संभव हथकंडा अपना रही है—वे संसाधन जिन्हें स्थानीय लोग सौंपने को तैयार नहीं हैं। यह एक शुद्ध 'औपनिवेशिक मानसिकता' है, जहाँ राज्य अपने ही प्रांत को युद्ध के माल के रूप में देखता है।

CPEC का क्षरण और चीनी हितों पर प्रहार

बलूचिस्तान आज दक्षिण एशिया, मध्य एशिया और मध्य पूर्व के चौराहे पर एक वैश्विक हॉटस्पॉट के रूप में खड़ा है। ग्वादर पोर्ट और चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे ने इस क्षेत्र के महत्व को तो बढ़ाया, लेकिन यही 'विकास' बलूच लोगों के लिए अभिशाप बन गया। बढ़ते चीनी प्रभाव और स्थानीय संसाधनों के शोषण ने बलूच विद्रोहियों को सीधे चीन के खिलाफ खड़ा कर दिया है।

चीनी नागरिकों और परियोजनाओं पर BLA के निरंतर हमले इस्लामाबाद और बीजिंग के बीच बढ़ते घर्षण का संकेत हैं। बीजिंग अब पाकिस्तान की सुरक्षा गारंटी पर भरोसा करने को तैयार नहीं है। बलूचिस्तान की हिंसा अब केवल आंतरिक सुरक्षा का मुद्दा नहीं रही; यह पाकिस्तान के शासन के संकट का प्रतीक बन गई है, जो आसिम मुनीर के नेतृत्व में पूर्ण सैन्यीकरण और तानाशाही की ओर तेज़ी से बढ़ रहा है।

'इंडियन बूगीमैन' और हार का नकाब

बलूच हमलों में भारतीय संलिप्तता के पाकिस्तान के आरोप उस टूटे हुए कांच को ढकने की एक हताश कोशिश है, जिसके पार दुनिया साफ देख सकती है। यह भारत विरोधी उन्माद की रेत पर बनी एक काल्पनिक कहानी है। नई दिल्ली को उस बारूद के ढेर को सुलगाने की कोई आवश्यकता नहीं है, जिसे खुद पाकिस्तान की गलतियों ने दशकों में तैयार किया है। बलूचिस्तान की पीड़ा का कारण कोई बाहरी हस्तक्षेप नहीं, बल्कि वर्षों की राजनीतिक उपेक्षा, आर्थिक शोषण और क्रूर सैन्य दमन है।

इस्लामाबाद चाहता है कि दुनिया उसकी आंतरिक विफलताओं को नज़रअंदाज़ करे और उन 'अदृश्य भूतों' का पीछा करे जिन्हें उसने अपनी अक्षमता छिपाने के लिए गढ़ा है। हालाँकि, वैश्विक समुदाय अब पाकिस्तान के 'विक्टिम कार्ड' को स्वीकार करने के मूड में नहीं है। भारतीय हस्तक्षेप का राग अलापना पाकिस्तान के लिए अपनी जिम्मेदारी से बचने के एक विफल प्रयास के अलावा और कुछ नहीं है।

शासन के दो मॉडल: दमन बनाम विकास

जहाँ इस्लामाबाद ने बलूचिस्तान में लगभग विशेष रूप से

'पाशविक बल' पर भरोसा किया है, वहीं भारत ने ऐतिहासिक रूप से उग्रवाद और शासन के संकटों को हल करने के लिए राजनीतिक सुलह और विकासात्मक दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी है। आतंकवाद विरोधी रणनीति के भीतर 'सुशासन' की भूमिका पर भारत का ध्यान उसे पाकिस्तान की तुलना में नैतिक और रणनीतिक श्रेष्ठता की स्थिति में रखता है। जहाँ पाकिस्तान की नीतियां अलगाव और जबरदस्ती में निहित हैं, वहीं भारतीय मॉडल समावेशी विकास और एकीकरण पर ज़ोर देता है।

एक सैन्य-प्रधान हाइब्रिड निज़ाम के तहत, पाकिस्तान सामाजिक और राजनीतिक रूप से गहराई से अस्थिर हो गया है। बलूचिस्तान में बढ़ता संघर्ष भारत के लिए अपनी क्षेत्रीय उपस्थिति को मज़बूत करने और दुनिया के सामने अपने शासन के मॉडल को प्रदर्शित करने का एक दुर्लभ अवसर प्रदान करता है। रावलपिंडी की प्रतिक्रियावादी और सैन्यीकृत नीतियों के बिल्कुल विपरीत, भारत की नीति क्षेत्रीय सहयोग और स्थिरता पर टिकी हुई है।

अफगान घर्षण और दोहरी जंग

बलूचिस्तान की आग बुझाने के बजाय, पाकिस्तानी सेना ने अफगानिस्तान के साथ शत्रुता को और बढ़ा दिया है। टीटीपी (TTP) आतंकवादियों को निशाना बनाने के बहाने अफगान क्षेत्र के भीतर किए गए हवाई हमलों ने तालिबान शासन को एक कड़वे दुश्मन में बदल दिया है। अफगानिस्तान के साथ जुड़ाव की एक सुसंगत नीति बनाने में पाकिस्तान की विफलता ने हिंसा के चक्र को केवल गति दी है। आज, पाकिस्तान दो मोर्चों पर युद्ध लड़ रहा है: एक अपने ही नागरिकों के खिलाफ और दूसरा अपने पड़ोसी के खिलाफ, जो पूरे क्षेत्र को अस्थिरता की खाई की ओर धकेल रहा है।

क्षेत्रीय शक्ति संतुलन का नया ध्रुव

जैसे-जैसे चीनी विस्तारवाद की छाया बढ़ रही है और अफगान-पाकिस्तान सीमा पर स्थिति और अधिक अनिश्चित होती जा रही है, भारत को अपनी रणनीति में सतर्क और लचीला रहना होगा। पाकिस्तान वर्तमान में एक व्यवस्थागत पतन के कगार पर खड़ा है; बलूचिस्तान वह धुरी बन सकता है जिस पर क्षेत्रीय शक्ति संतुलन स्थायी रूप से बदल जाएगा।

बलूचिस्तान में विकसित हो रही गतिशीलता न केवल पाकिस्तान का भविष्य तय करेगी बल्कि दक्षिण और मध्य एशिया में भी इसकी गूंज सुनाई देगी। विफल राज्यों और अधिनायकवाद से जूझती दुनिया में, क्षेत्रीय शांति, स्थिरता और सतत विकास का भारतीय दृष्टिकोण सबसे व्यवहार्य रणनीतिक मॉडल पेश करता है। बलूचिस्तान अब केवल पाकिस्तान की घरेलू समस्या नहीं है; यह एक नई विश्व व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है जहाँ भौगोलिक संप्रभुता को अब धार्मिक बयानबाजी के बोझ से नहीं दबाया जा सकेगा।

रावलपिंडी के जनरलों को अंततः यह महसूस करना होगा कि साम्राज्य केवल मानचित्रों पर रेखाएं खींचने से जीवित नहीं रहते, बल्कि लोगों के दिलों और दिमागों को जीतकर बचते हैं। बलूचिस्तान में, वह विश्वास केवल कम नहीं हुआ है—वह पूरी तरह से चकनाचूर हो चुका है।

आज मणिपुर की नीली पहाड़ियों के ऊपर उठता धुआँ केवल जलते घरों की गंध नहीं लिए हुए है; वह बिखरी हुई स्मृतियों की राख भी साथ ला रहा है। जैसे-जैसे हिंसा समुदायों के बीच की रेखाओं को फिर से खींच रही है, सिनेमा एक नाज़ुक लेकिन अडिग रोशनी बनकर उभरता है—एक घायल धरती को याद दिलाते हुए कि सबसे भीषण लपटों के बीच भी कहानियाँ साँस लेने का रास्ता खोज ही लेती हैं।

धुंए के अक्षर और उम्मीद की राख

मणिपुर की नीली पहाड़ियों पर जब धुंए की लकीरें उठती हैं, तो वे केवल जलते हुए काष्ठ और कंक्रीट का साक्ष्य नहीं होतीं। वह धुंआ उस साझा विरासत की अंत्येष्टि का धुंआ है, जिसे सदियों के प्रेम ने सींचा था। वह धुंआ एक समूची सभ्यता की स्मृति का धुंआ है, जो अब राख बनकर हवाओं में तैर रही है। मई 2023 की उस मनहूस सुबह से शुरू हुई जातीय हिंसा ने इस सुरम्य राज्य के भूगोल को ही नहीं, बल्कि उसके भविष्य को भी दो फाड़ कर दिया है। मैतेई और कूकी- ज़ो समुदायों के बीच खिंची वह अदृश्य रेखा अब केवल मानचित्रों पर नहीं, बल्कि आंगन की देहलीज, बच्चों की मुस्कान और बड़ों के विश्वास के सीने पर एक गहरे घाव की तरह अंकित हो चुकी है।

जब बारूद की गंध ही हवा की नई गंध बन जाए और बंदूकों की कड़कड़ाहट संवाद की जगह ले ले, तब सभ्यताएं बोलना बंद कर देती हैं—और कला बोलना शुरू करती है।शंकाओं के कुहासे में जब अपने ही पराए लगने लगें, तब कला—विशेषकर सिनेमा—उस अंतिम टिमटिमाते दीपक की तरह शेष रहती है, जो प्रलयंकारी अंधेरे की आंखों में आंखें डालकर अपनी लौ को बचाए रखने का दुस्साहस करता है।

इसी घनघोर अमावस के बीच, सात समंदर पार लंदन की धरती पर मणिपुर के गौरव की एक नन्ही सी किरण फूटती दिखी। निर्देशिका लक्ष्मीप्रिया देवी की फिल्म 'बूंग' को जब अंतरराष्ट्रीय मंच पर सम्मान मिला, तो वह केवल एक सेल्युलाइड की जीत

जातीय हिंसा की लपटों के बीच फिल्म 'बूंग' मणिपुर की आहत पहचान के लिए एक 'सांस्कृतिक कवच' बनकर उभरती है। यह विस्थापन और घृणा के माहौल के बीच टूटी हुई समुदायों को जोड़ने और मानवीय संवेदना को बचाए रखने का एक मार्मिक और जिद्दी प्रयास है।

नहीं थी। वह उस 'सांस्कृतिक हठ' की विजय थी, जो नरसंहार और विस्थापन के तांडव के बीच भी अपनी पहचान को विस्मृत होने से बचाए रखना चाहती है। मणिपुर के लिए यह उपलब्धि उस पहाड़ी झरने के समान है, जिसे हजारों कठोर पत्थरों ने रोकना चाहा, पर उसने अपनी प्यास और अपनी गति के बल पर चट्टानों का सीना चीरकर अपना मार्ग प्रशस्त कर लिया।

किंतु इस फिल्म की महानता उस स्वर्ण पदक या प्रमाणपत्र में निहित नहीं है, बल्कि उस मर्मस्पर्शी स्मृति में है जिसे यह स्पर्श करती है। 'बूंग' एक ऐसे अबोध बालक की कथा है, जो युद्ध की विभीषिका के बीच अपने बिखरे हुए परिवार के तिनकों को समेटकर फिर से एक 'नीड़' बनाने का स्वप्न देखता है। यह व्यथा केवल उस पात्र की व्यक्तिगत व्यथा नहीं है; यह मणिपुर के उन हजारों शिशुओं की सामूहिक चीख है, जिनकी दुनिया रातों-रात राहत शिविरों के तिरपाल और अनिश्चितता के खौफ से भर गई है। उनके लिए 'घर' अब ईंट-पत्थर की कोई इमारत नहीं रही, बल्कि वह एक धुंधली स्मृति बन चुका है—बिल्कुल वैसे ही जैसे

जलज श्रीवास्तव

किसी पुराने एलबम में दबा हुआ कोई पीला पड़ चुका चित्र, जिसे छूने पर भी टूटने का भय बना रहता है।

इस कृति की सबसे मार्मिक और रूह को कंपा देने वाली विडंबना यह है कि फिल्म की निर्माण प्रक्रिया के दौरान मैतेई और कूकी कलाकारों ने एक-दूसरे के समुदायों की भूमिकाएं जीवंत की हैं। परदे के पीछे का यह सौहार्द आज के मणिपुर की उस नग्न वास्तविकता पर एक करारा प्रहार है, जहाँ आज एक समुदाय का व्यक्ति दूसरे के मोहल्ले की धूल फांकने की कल्पना भी नहीं कर सकता। सिनेमा यहाँ एक ऐसी जादुई खिड़की बन जाता है, जिससे झांकने पर वह अतीत दिखाई देता है जहाँ पहचान का अर्थ केवल संकीर्ण जातीय लकीरें नहीं थीं, बल्कि एक ही आकाश के नीचे साथ जीने का संकल्प था। यह फिल्म हमें याद दिलाती है कि हम क्या थे, और नफरत ने हमें क्या बना दिया है।

मणिपुर का सिनेमा कभी भी केवल नाच-गाने या मनोरंजन का साधन नहीं रहा; वह हमेशा से एक 'सांस्कृतिक प्रतिरोध' का अमोघ अस्त्र रहा है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जब राजनीति के गलियारे उथल-पुथल से भरे थे, तब भी यहाँ के फिल्मकारों ने कैमरे को एक दार्शनिक हथियार की तरह थामा। अरिबाम श्याम शर्मा की कालजयी दृष्टि और एम.के. बिनोदिनी देवी की संवेदनशील लेखनी ने मणिपुरी सिनेमा को जो गरिमा प्रदान की, वह दुर्लभ है। उनकी कृतियों में मातृत्व की ममता, आध्यात्मिकता की गहराई और सामाजिक ताने-बाने की वह सूक्ष्म बुनावट दिखती थी, जो तत्कालीन हिंसक परिदृश्य के बीच एक 'मानवीय संतुलन' की आधारशिला रखती थी।

किंतु मणिपुर की व्यथा केवल कहानियों तक सीमित नहीं है; यह उस भूगोल का विलाप है जहाँ सत्ता और संस्कृति निरंतर एक-दूसरे से टकराते रहे हैं। सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून की छाया ने इस राज्य को दशकों तक एक ऐसे स्थायी सैन्य क्षेत्र में तब्दील कर दिया, जहाँ सूरज की पहली किरण के साथ आशा नहीं, बल्कि बूटों की आहट और संगीनों की चमक दिखाई देती थी। ऐसे दमघोंटू वातावरण में या तो रचनात्मकता दम तोड़ देती है, या फिर वह इतनी मुखर हो जाती है कि सत्ता के सिंहासन डोलने लगते हैं। मणिपुर के रचनाकारों ने चुप्पी के बजाय गर्जना को चुना।

समय के थपेड़ों ने इस कला संस्कृति को कई गहरे जख्म दिए। कभी चमकने वाले सिनेमाघर खंडहरों में तब्दील हो गए, कभी भूमिगत संगठनों के फरमानों ने परदों को सूना कर दिया, और कभी आर्थिक अभावों ने स्वप्नों की भ्रूण हत्या कर दी। लेकिन फिर भी, कुछ ऐसे 'सांस्कृतिक प्रहरी' डटे रहे जिन्होंने इस मशाल को बुझने नहीं दिया।

दिशा - तलविंदर का Lollapalooza Love

बी-टाउन धमाका

बॉलीवुड की गलियों में इन दिनों चर्चाओं का पारा 'हाई' है! अपनी कातिलाना फिजीक और बोल्ड अंदाजों से सबका दिल धड़काने वाली दिशा पाटनी की लाइफ में अब एक नया 'रिदम' सुनाई दे रहा है। जी हां, गॉसिप के गलियारों में शोर है कि दिशा अब अपनी पुरानी यादों के पिंजरे से बाहर निकलकर पंजाबी म्यूजिक सेंसेशन तलविंदर की धुन पर थिरक रही हैं। हाथों में हाथ, और 'इश्क' सरेआम! हाल ही में मुंबई के 'लोलापालूजा इंडिया' फेस्टिवल में जब दिशा और तलविंदर हाथ में हाथ डाले नजर आए, तो कैमरों के फ्लैश थमने का नाम नहीं ले रहे थे। ब्लैक आउटफिट में दिशा की हॉटनेस और तलविंदर का 'मिस्ट्री मैन' वाला अंदाज—सब कुछ चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था कि ये सिर्फ 'जस्ट फ्रेंड्स' वाला मामला तो कतई नहीं है!

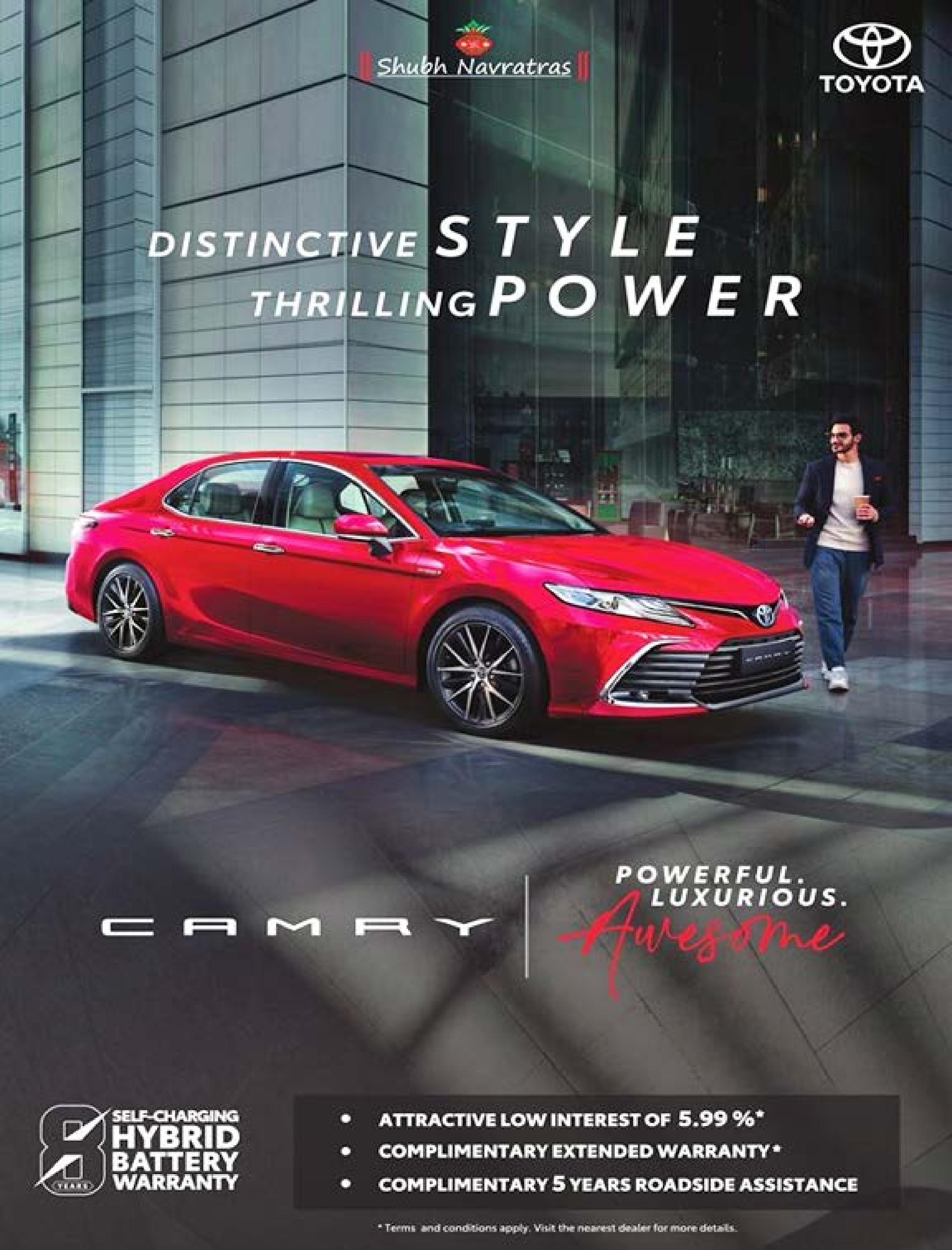

Shubh Navratras
TOYOTA
DISTINCTIVE STYLE
THRILLING POWER
CAMRY
POWERFUL.
LUXURIOUS.
Awesome
SELF-CHARGING HYBRID BATTERY WARRANTY
8 YEARS
• ATTRACTIVE LOW INTEREST OF 5.99 %*
• COMPLIMENTARY EXTENDED WARRANTY*
• COMPLIMENTARY 5 YEARS ROADSIDE ASSISTANCE
* Terms and conditions apply. Visit the nearest dealer for more details.

RNI TITLE CODE : DELENG19447

MARC SANITATION PVT. LTD.

A-2, S.M.A. Co-op. Industrial Estate, G.T. Karnal Road, Delhi-110 033

Ph: 27691410, Fax: 011-27691445/27692295 E-mail: info@marcindia.com Website : www.marcindia.com